CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७४४
वे० १५३५

आलापपद्धति
अथवा
द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0:In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

पाठकवृन्द !

मैंने श्रीमान् स्व० पंडितवर्य्य गोपालदास जी वरैया रचित श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका का स्वाध्याय किया, जिससे मुझे सिद्धांत ग्रन्थों के स्वाध्याय करने में बहुत सहायता मिली। यह पुस्तक केवल मुझे ही नहीं, किन्तु जैन संसार को बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई, इसी लिये दिग० जैन समाज के सभी परीक्षालयों ने इसे स्थान दिया है। प्रत्येक जैन संस्था में यह अवश्य ही पढ़ाई जाती है। इसका अनुवाद भी गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में हो चुका है, और कई २ आवृत्तियां भी निकल चुकी हैं। इतना ही नहीं, किन्तु प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमी को यह पुस्तक कोष के समान बहुत सहायता देती है। वास्तव में पंडित जी ने इसे रच कर जैन समाज का बड़ा उपकार किया है, जो चिरस्मरणीय रहेगा।

इसी पुस्तक के पढ़ने पर मुझे यह उत्कंठा उत्पन्न हुई कि इसी के समान सरल और संक्षेप में यदि एक न्याय प्रवेशिका अथवा ऐसी ही कोई पुस्तक बनजाय तो न्याय ग्रन्थों में सर्व साधारण साधर्मी बन्धुओं को प्रवेश करने की रुचि उत्पन्न हो जाय। इसके लिए मैंने कतिपय विद्वानों से निवेदन भी किया, परन्तु मेरी मनोकामना सफल न हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी विचार में था, कि कटनी निवासी स्व० मुन्शी नाथूराम जी लमेचू द्वारा लिखित व प्रकाशित "न्याय शास्त्र परिभाषा" नाम की छोटी सी पुस्तक मुझे प्राप्त हुई, जिसे देख कर हर्ष हुआ, परंतु वह बहुत ही छोटी थी-और इसी लिए मेरी भावना पूर्ण न होसकी, किंतु और भी तीव्राकांक्षा बढ़ गई।

आज से लगभग १ युग पहिले की बात है, जब कि मैं नोकरी आदि आजीविका के कार्यों से अवकाश पा चुका था, और सत्समागम तथा व्रत की भावनाएं भी हृदय में बढ़ रही थी, मैं कुछ समय दानवीर स्व० सेठ माणिकचंद्र पानाचंद्र दिग० जैन वोर्डिंग रतलाम में ठहरा। उन दिनों वहां मास्टर कालूराम परवार नरसिंहपुर (C. P.) निवासी, जो मेरे मंझले सहोदर बंधु हैं, सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। उनकी सम्मति से मैंने श्री मद्देवसेनाचार्य विरचित "आलाप पद्धति" नाम के सरल और संक्षिप्त ग्रंथ का भाषानुवाद विस्तार से करना प्रारंभ कर दिया, और कुछ समय में ही स्वबुद्धि अनुसार रचकर-उसे पूर्ण भी कर लिया।

फिर भी आंतरिक इच्छा यही रही कि यदि कोई विशेषज्ञ विद्वान ही इस कार्य को करता तो अच्छा होता। इस लिए बहुत समय तक यों ही उसे अपने पास रख छोड़ा. पश्चात् एक बार बा० बिहारी लाल जी कठनेरा बम्बई से बात होने पर उन्होंने इसे प्रकाशित करने का विचार प्रगट किया. तब उनके पास भेज दी, उन्होंने दो एक विद्वानो के पास इसे संशोधनार्थ भेजी, परंतु वर्षों उनके पास रखी रहने पर भी वे इसे देखने का अवकाश न पा सके, और कुछ यों ही देख दाख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर पीछे भेजदी जिससे कठनेरा जी प्रकाशित करने में असमर्थ रहे ।

निदान इन सब बातों को देखते हुए भी इसी चातुर्मास में जब कि मैं लाकरोड़ा (गुजरात) में ठहरा था, इसे वापिस मंगाली, और निश्चय किया कि अवश्य ही प्रकाशित कराऊंगा, यदि इस में कुछ भूल भी होगी तो अन्य कोई विद्वान् उसे सुधारने का अथवा नवीन रचना करने का प्रयत्न करेगा। अब प्रश्न रह गया द्रव्य का, सो भाग्योदय से जब मैं चौमासा बाद लाकरोड़ा से निकला तो ओरान आया, वहां इस विषय में बात हुई, तो वहां के धर्म प्रेमी बाल्य ब्रह्मचारी **सेठ सवाभाई सखमल शा,** (जिनका जीवन चरित्र आगे दिया गया है) ने तत्काल ही इस की एक सहस्र प्रतियां स्वखर्च से प्रकाशित कराने का वचन दे दिया। इसी के अनुसार में श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम चौरासी (मथुरा) के वार्षिक अधिवेशन के समय यहां आया और आश्रम के प्रधानाध्यापक पंडित नंदकिशोर जी शास्त्री से अपना विचार प्रकट किया, तो उन्होंने सहर्ष इसका संशोधन करके मुद्रणालय में देदिया, जिस से मैं कई वर्षों के पश्चात् इस सन्मति सुमन माला के चतुर्थ सुमन स्वरूप यह "आलाप पद्धति भाषा टीका सहित अपर नाम द्रव्यानुयोग प्रवेशिका" आप लोगों के स्वाध्यायार्थ उपस्थित कर सका हूं। आशा है आप लोग इस से लाभ उठाएंगे, और यदि कोई भूल दृष्टि गत हो, तो सूचित करने का कष्ट सहन करेंगे, ताकि अगली आवृत्तियों में सुधार हो सके । मैंने तो शक्ति भर इसे सरल बनाने का प्रयत्न किया है और इसी लिए कई चार्ट्स नकशे भी दे दिये हैं, ताकि प्रत्येक भाई इसे समझ सके ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि जैन प्राथमिक शालाओं में यह पुस्तक पाठ्यविषयों में रख दीजाय तो छात्रों को बहुत लाभ हो सकता है और उन की आगे न्याय ग्रन्थों में प्रवेश करने की रुचि बढ़ सकती है।

अंत में श्रीमान् पंडित नन्दकिशोर जी शास्त्री को जिन्होंने इसके संशोधन तथा मुद्रणादि कार्यों में हाथ बटाया है, तथा श्रीमान् सेठ सबाभाई सखमल शा, ओरान् (गुजरात) निवासी को कि जिन्होंने अपना न्यायोपार्जित द्रव्य व्यय करके इसे प्रकाशिक कराया है, धन्यवाद है कि जिनको सहायता से मैं अपनी शुभकामना में सफलता प्राप्त कर सका।

कृष्ण अमावस कार्तिकी संवत् सन्मति जान।
तीर्थंकर[२४] परमेष्टि[५] नम तत्त्व[९] भाव उर आन॥
चौरासी (मथुरा) सुथल जम्बु स्वामि शिव थान।
करी प्रकट यह पुस्तिका "दीप" स्वपर हित जान॥

जिनागम सेवी—
दीपचन्द्र वर्णी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक — श्रीमान् सेठ सवाभाई जी, भोगाय [अहमदाबाद]

अग्रवाल मशीन प्रेस, मथुरा.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक का संक्षिप्त जीवनचरित्र

शा० सवा भाई का जन्म विक्रम संवत् १९३८ में गुजरात प्रांत के करोल ग्राम में हुआ था। आप दशाहुँवड़ जाति के एक उज्ज्वल रत्न हैं। आपके पिता का नाम शा० सखमलजी था। आपसे छोटे जीवराज और देवचन्द्र दो भाई और एक रेवा बाई नाम की बहिन भी थी, परन्तु वे अपनी अल्प वय में ही इस मनुष्य शरीर को त्याग कर परलोक प्रयान कर गये, इस लिये शा० सवा भाई ही अपने कुल के अकेले दीपक रह गये। इनके पिता लेन देन (धीर-धार) का धन्धा करते और अपना निर्वाह करते थे। ये साधारण स्थिति के गृहस्थ थे।

जिस समय इनकी अवस्था सात वर्ष की थी, तभी इन के पिता का देहावसान होगया। उस समय अन्य बालकों के समान स्वच्छन्द होकर इन्होंने अपना समय न खोकर पढ़ने में मन लगाया, परन्तु सात क्लास गुजराती पढ़ने ही पाये थे कि इन की माता भी इनको इकेला छोड़ कर पितृलोक को प्राप्त हो गई। उस समय ये बिलकुल असहाय हो गये, परन्तु ऐसी दशा में भी एक छोटी अवस्था के इस बालक ने घबराहट किये बिना ही पुरुषार्थ पर कमर बांधी और पढ़ना छोड़कर अपना पैतृक धन्धा उत्साह से करने लगा, और सफलता भी पाई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनकी बाल्यावस्था से ही धर्ममें रुचि थी,इस लिये आर्थिक स्थिति सुधरने पर इन को सत्संग की इच्छा हुई और पुण्योदय से इन का परिचय ओरान निवासी मास्टर लल्लू भाई रायचन्द्र से होगया । मा० लल्लू भाई एक परोपकारी धर्मात्मा मुमुक्षु थे। उनकी भावना सदैव यही रहती थी, कि किसी भी प्रकार से हमारे गुजराती साधर्मी जन, मिथ्यात्वादि कुरीतियों से छूट कर सन्मार्ग में लगें, इसके लिये वे जीवन भर प्राणपन से प्रयत्न भी करते रहे,इस लिये सवा भाई से उनका धर्म प्रेम बहुत बढ़ गया जिससे सवा भाई भी ओरान आकर रहने लगे और स्वर्गीय जड़ाव बाई पाठशाला में अवैतनिक रूप से बालक बालिकाओं को धर्म शिक्षा भी देने लगे । यहां इनको धर्म रुचि विशेष बढ़ गई जिसका फल यह हुआ कि आपने यह नियम कर लिया कि यदि मेरी ३५ वर्ष की अवस्था तक कोई विवाह का सहज कारण बन जायगा, तो परणूंगा अन्यथा आजन्म ब्रह्मचर्य ही रक्खूंगा। दैव अनुकूल और भविष्य उज्ज्वल होने वाला होने से ही लग्न का संयोग न मिला और आपने अवधि पुरी होते ही ब्रह्मचर्य की आजन्म के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, तथा अपना मन विशेष रूप से धर्म ध्यान (पूजा, स्वाध्याय, सामायिक, व्रत, उपवास आदि) में लगा दिया, जो कि आज भी बराबर वृद्धिगत होते हुए होरहा है, अर्थात् नित्य सामाजिक स्वाध्याय, जिन पूजादि तो करते ही हैं, किन्तु प्रति अष्टमी और चतुर्दशी का उपवास भी करते हैं, नित्य एक वार एक एक रस त्याग कर शुद्ध भोजन लेते हैं, आवश्यकता पड़ने पर शुद्ध प्रासुक देशी दवा ही सेवन करते हैं, शुद्ध सूती खादी के ही वस्त्र पहिनते हैं, बिलकुल सादगी से रहते हैं, आपके असाता कर्म के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदय से शरीर में सदैव कुछ न कुछ व्याधि बनी रहती है,तो भी अपने व्रत नियमों में कभी शिथिलता नहीं आने देते, आपने अष्टाह्निका, रत्नत्रय, दशलक्षणी, अनन्त व्रत आदि व्रत, विधि पूर्वक करके उद्यापनादि किये हैं, दो बार दश लक्षण के दश दश उपवास भी लगातार करके गुजरात प्रान्त की रूढ़ि के अनुसार हज़ारों रुपया पूजा विधान में, तथा लोगों को जिमाने आदि में *व्यय भी किये हैं।

---

*नोट–गुजरात में प्रथा है कि १०उपवास करने वाले की शक्ति यदि अमुक रकम लगभग १०००) या १२००) खर्च करने को होवे, तभी कर सक्ता है अन्यथा नहीं,और इसलिए उन धर्म के दिनों में उसे अनेक ग्रामों में पत्र लिख कर सम्बन्धी आदि को बुलाना पड़ता है, जो कि ५०० के लगभग आजाते हैं। सब उनको दोनों बार खिलाने, उनके जानवरों को चारा चन्दी देने, उनके ठहराने आदि की सम्पूर्ण चिंता व प्रन्बध उसी उपवास करने वाले की ओर से ही किया जाता है। वह एक कागज की कोठरी बनवाकर उसमें तख्त पर गादी लगा कर बैठता है, ग्राम वासी व आगम्तुक सब उसकी बन्दना करते, और नारियल आदि रुपया भेंट करते हैं, "साता छे" ऐसा पूछते हैं, पूनम को उसको पालकी में बैठा कर जलूस निकालते हैं, पश्चात् दर्शन कराकर पारणा कराते हैं। उपवास करने वाला बिलकुल शिथिल होजाता है,उसका धर्मध्यान छूट जाता है, उसको आगन्तुकों के सत्कार की चिंता और अपनी प्रशंसा की इच्छा रहती है, पारणा के पश्चात् आगन्तुकों को यथा योग्य भेंठ देकर विदा किया जाता है। इस प्रकार इन पवित्र दिनों में न तो आगन्तुकों का धर्म ध्यान होता है और न नगर निवासियों का ही, इसलिए इस रूढ़ि में सुधार की आवश्यकता है, वह यह कि, (१) उपवास करने वाले को खर्च करने की जरूरत न होना चाहिये, अर्थात खर्च न करने पर भी वह १० या अधिक उपवास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यों तो आप दयालु स्वभावी होने से सदैव गुप्त रूप से दान व परोपकारादि ग़रीबों की सहायता करते ही रहते हैं,

---

स्व शक्ति अनुसार कर सके और उसकी टीका न की जाय। टीका करनेवाला निंद्य गिना जाय, (२) उपवास के दिनों में केवल धर्म ध्यान, पूजा, स्वाध्याय, सामायिकादि ही किए जांय, किसी भी सगे सम्बन्धी बाहिरी लोगों को न बुलाया जाय, यदि कोई बुलावें तो पारणा के पश्चात् (३) उपवास उतने ही करे—जितने में बिना किसी की सहायता के नित्य त्रिकाल सामायिक पूजा स्वाध्यायादि धर्म ध्यान होता रहे, आर्त्त रौद्र भाव व पराधीनता शिथिलता न होने पावे. (४) कोठरी आदि न बनाना न वर घोड़ा (जलूस) निकालना चाहिए, क्योंकि तप में तो विषय व मानादि कषायों तथा इच्छा का त्याग किया जाता है, (५) बन्दना कराना व भेंट लेना देना भी अनुचित है, क्यों कि बन्दना सप्तम प्रतिमा धारी से लेकर ऊपर की प्रतिमा वालों को ही किया जाता है और ये उपवास करने वाले कोई प्रतिमा धारी ब्रह्मचारी नहीं होते, पारणे के पीछे जैसे के तैसे हो जाते हैं, और धर्म मार्ग में भेंट भी अनुचित है, (६) यदि द्रव्य खर्च करने की शक्ति हो, तो लोगों को न बुलाकर उस द्रव्य से पाठशाला, शुद्ध औषधालय, पुस्तकालय आदि चलाना चाहिए, विद्यार्थियों को बोर्डिंगों में, ब्रह्मचर्याश्रमों, श्राविकाश्रमों व तीर्थ क्षेत्रों में सहायता देना चाहिए। शास्त्र प्रकाशन कराना तथा अन्य जरूरी उपकरण मंदिरादि में भेंट देना, या दीन दुखी प्राणियों की सहायता में लगाना चाहिए, (७) उपवास करने वाले को आजन्म सप्तव्यसन का त्याग, अष्ट मूल गुण पालन, अभक्ष्य का, मिथ्यात्व का तथा अन्याय का त्याग अवश्य ही करना चाहिए, तात्पर्य कम से कम सम्यक्त्व पूर्वक श्रावक के बारह व्रतों का पालन तो करना ही चाहिए, इत्यादि। आशा है गुजरात के सज्जन ध्यान देकर इसमें सुधार करेंगे।

हितैषी—दीपचन्द वर्णी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो भी आपने अपनी शक्ति के अनुसार जो विशेष दान दिया है, सो नींचे प्रमाण है :-

५००) सम्मेद शिखर चंपापुर, पावापुर आदि की वन्दनार्थ पांच छः साधर्मी जनों को निज व्यय से ले गये, तथा स० शिखर जी में रथोत्सव कराया।

५५१) गिरनार जी में एक कोठरी बँधवाने को ३००) रुपया तथा सरस्वती-भवन के लिये २५१) रुपया नगद दिये।

२५१) पालीताना में (शत्रुंजय तीर्थ पर) सामिग्री धोने को कोठरी बनवाई।

२२५) तारङ्गा जी के सम्भवनाथ के मन्दिर में जर्मन सिलवर की जाली लगवाई।

३१) तारङ्गा हिल स्टेशन पर कबूतर खाना [दाना चुगने को] बनवाया।

३०) ब्रह्मचर्याश्रम कुंथुलगिरि को सहायता।

८५) दिग० जैन बोर्डिंग प्रांतिज को उद्घारनोत्सव पर दिये।

६५) श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम चौरासी, मथुरा में एक लोहे की अलमारी भेंट दी।

१२५) अलाप पद्धति (न्याय का सरल ग्रन्थ) श्रीयुक्त पूज्य धर्मरत्न पण्डित दीपचन्द्र जी वर्णी, नरसिंहपुर (सी० पी०) निवासी कृत भाषा टीका सहित १००० प्रति छपवा कर प्रकाशित कराया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके सिवाय और भी वहुत से उपकर्ण तथा शास्त्र जिन मन्दिरों तथा साधर्मी जनों को भेंट किये और करते रहते हैं।

आपका विचार शीघ्र किसी निकटवर्ती ग्राम में जहाँ वालक वालिकाओं की पढ़ने योग्य यथेष्ट संख्या हो, एक दिगम्बर जैन पाठशाला अपने स्मारक स्वरूप स्थाई रूप से खोल देने का है। प्रभो ! प्रार्थना है कि यह कार्य शीघ्र ही प्रतिफलित होवे।

तात्पर्य-आप एक आदर्श पुरुष हैं, गृह में रहते हुए भी गृहविरत हैं। अतएव आपकी अनिच्छा होते हुए भी मैंने आपका चित्र और चरित्र आग्रह पूर्वक इस ग्रन्थ के साथ प्रकाशित कराने का साहस किया है। अन्त में श्रीजी से प्रार्थना है कि हमारे शा० सवा भाई लखमल जी को निरोग्यता पूर्वक चिरायु प्राप्त हो ताकि वे विशेष रूप से धर्म ध्यान करते हुए स्वपर उपकार कर सकें। इति शुभंभूयात्॥

आपका गुणानुरागी—

(पं०) चुन्नीलाल कठनेरा जैन,

अध्यापक-दिग० जैन पाठशाला,

ओरान [गुजरात]।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

आलाप पद्धति

[भाषा टीका सहित]

भाषाकार का मंगलाचरण

दोहा ।

पंचनाम जिन सार्थक, वर्द्धमान[1] अति वीर[2] ।
नमूं वीर[3] सन्मति[4] महा, वीरें हरण भव-पीर ॥१॥
बन्दूं वाणी जिन तनी, स्याद्वाद मय सार ।
विद्वज्जन मन रंजनी, भव-दाधि शोषण हार॥२॥
गौतमादि गणपति प्रणमि, देव सेन मुनि सार ।
भाषा 'विधि-आलाप' की, करूँ स्वपर हितकार ॥३॥

ग्रन्थकार का मंगलाचरण और प्रतिज्ञा

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च ।
पर्यायाणां विशेषेण नत्त्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥ १ ॥

अर्थ—मैं (श्री देवसेन आचार्य) अन्तिम तीर्थंकर श्री वीरनाथ जिनेन्द्र को नमस्कार करके द्रव्यों के गुण, स्वभाव और पर्यायों का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—यहां पर ग्रन्थ रचना के प्रारम्भ में श्री मद्देव सेनाचार्य ने प्रथम ही श्री वीरनाथ जिनेन्द्र को नमस्कार करके द्रव्यों के गुण स्वभाव और पर्यायों का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की प्रतिज्ञा की है।

इसमें आचार्य ने जो प्रथम ही मङ्गलाचरण किया है, उसका हेतु-प्रधान पुरुषों ने इस प्रकार बताया है :—

चार हेतु: मंगलकरण, नास्तिकता परिहार[१]।
विघ्न-हरण[२], गुण-चिंतवन[३], पालन शिष्टाचार[४]॥

जन-श्रुति है—"श्रेयान्सि वहु विघ्नानि" अर्थात् अच्छे कार्यों में विघ्न आजाया करते हैं। मङ्गलाचरण करने से जो शुभ भाव होते हैं, उनके निमित्त से अन्तराय कर्म का अनुभाग क्षीण हो जाता है. इस लिये वह अन्तराय कर्म जो अभीष्ट कार्य में विघ्न करता था, बाधक नहीं हो सकता ॥ १ ॥ बहुत पुराने समय से शिष्ट (उत्तम) पुरुष ग्रन्थ की आदि में मङ्गलाचरण करते आये हैं, अतएव शिष्टाचार पालन के हेतु मङ्गलाचरण करना आवश्यक ही है॥२॥ मङ्गलाचरण करने से ग्रन्थ-कर्त्ता की पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, इहलोक, परलोक, बन्ध, मोक्ष, जीव, अजीव आदि पदार्थों में श्रद्धा जान पड़ती है, इससे नास्तिकता का परिहार होता है ॥ ३ ॥ इष्ट सुख की प्राप्ति सम्यग्ज्ञान से होती है। सम्यग्ज्ञान आगम (शास्त्र) से होता है और आगम की उत्पत्ति आप्तसे होती है, इसलिये इष्ट फल की सिद्धि के अर्थ सिद्धि के परम्परा साधन व कारण वस्वरूप आप्त भगवान का स्तवन करना आवश्यक है ॥ ४ ॥ इसके सिवाय एक सब से बड़ी बात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह है कि जिन आप्त पुरुषों के बनाये हुए आगम के अभ्यास से अभीष्ट सुख के देने वाले ज्ञान की प्राप्ति होती है, उन आप्त पुरुषों का स्मरण, चिन्तवन, स्तवन, वन्दनादि कार्य के आरम्भ में न करने से कृतघ्नता का भी दोष लगता है। "नहिकृत मुपकारं साधवो विस्मरन्ति" अर्थात् साधुजन अपने ऊपर किये हुए उपकार को नहीं भूलते हैं, इस लिये इस उक्ति के अनुसार कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिये मङ्गलाचरण करना आवश्यक है। इस प्रकार मङ्गलाचरण के चार हेतु बता कर अब प्रतिज्ञा का वर्णन करते हैं :—

मूल ग्रन्थकर्त्ता ने गुण, स्वभाव और पर्यायों को विस्तार से वर्णन करने की प्रतिज्ञा की है। परंतु इस वाक्य में द्रव्य का नाम भी नहीं लिया गया, इस लिये इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि द्रव्य से गुण, स्वभाव तथा पर्यायें भिन्न वस्तुएँ हैं और द्रव्य कोई और ही वस्तु है, किंतु "*गुण समुदायो द्रव्यम्" इस वाक्य के अनुसार गुणों का समुदाय ही द्रव्य कहलाता है, इस लिये गुण, स्वभाव तथा पर्यायों के कथन से द्रव्य का भी कथन हो जाता है, क्यों कि यद्यपि संख्या, लक्षण और प्रयोजन के वश से अखण्ड द्रव्य में भी गुण-गुणी

---

* यहां गुण उपलक्षण पद है अर्थात् गुण, स्वभाव पर्यायों आदि का समुदाय समझना चाहिये न कि गुण एकला कहने से केवल गुण ही लेना और स्वभाव व पर्यायों का निषेध समझना। जैसे किसी ने कहा 'काकेभ्योदधि रक्षति', अर्थात् काक से दही की रक्षा करना, इसका यह अर्थ नहीं है कि बिल्ली आदि को खाने देना, किन्तु श्वान मार्जार काकादि से दही की रक्षा करना ऐसा ही आशय जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव-स्वभावी तथा पर्याय और पर्यायी की भेद कल्पना की जाती है, तथापि प्रदेश भेद न होने से ये गुण, स्वभाव व पर्यायें द्रव्य से अभिन्न ही हैं। अर्थात् गुण, गुणी, स्वभाव, स्वभावी और पर्याय, पर्यायी का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है-संयोग सम्बन्ध नहीं है। इस लिये गुण स्वभाव तथा पर्यायों का वर्णन करने से द्रव्य का भी वर्णन समझ लेना चाहिये, क्यों कि द्रव्य अपने गुण, स्वभाव तथा पर्यायों का अखण्ड पिण्ड होने के कारण न तो कभी अपने गुण, स्वभाव तथा पर्यायों से भिन्न हुआ है और न कभी होगा।

इसी प्रकार से गुण, स्वभाव,पर्यायें भी कभी अपने द्रव्य से न तो भिन्न हुई और न होवेंगी ही अतएव इन में से किसी का भी वर्णन करने से द्रव्य (जो कि तादात्म्य रूप से इन गुणादिकों का आधार भूत है) का वर्णन होना अवश्यम्भावी है। ऊपर बताया गया है कि गुणों का समुदाय ही द्रव्य है इससे यह बात भी स्पष्ट हो गई कि यदि गुण द्रव्य से अलग हो जावें तो द्रव्य का भी अभाव हो जायगा। जैसे आतान वितान रूप-सूत के समुदाय को ही तो वस्त्र कहते हैं, यदि सूत वस्त्र से पृथक् कर दिये जायें तो फिर सूत बिना वस्त्र कैसे रहेगा? अथवा उष्णता ही अग्नि का स्वभाव है, यदि अग्नि से उष्णता पृथक् होजाय, तो उष्णता के अभाव में अग्नि ही कैसे रह सकेगी? अर्थात् नष्ट हो जायगी। इसी प्रकार आश्रयी द्रव्य के अभाव में आश्रित गुणादि भी किस के आश्रय में रहेंगे, अर्थात् उनका भी अभाव हो जायगा; इत्यादि विवक्षा को लेकर ही ग्रन्थकर्त्ता ने द्रव्य सामान्य न कह कर गुण, स्वभाव तथा पर्यायों के (विशेष) कहने की प्रतिज्ञा की है। जिसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयं ग्रंथकर्त्ता ने " सा च किमर्थम् " इत्यादि प्रश्नोत्तर करके स्पष्ट कर दी है।

प्रसंगवश यह बता देना भी आवश्यक है कि नवीन ग्रन्थ बनाने वाले को नीचे लिखी हुई गाथा के अनुसार छः बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। यथा :—

मंगल णिमित्त हेउँ परिमाणं णाम तहय कत्तारं ।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमायरिओ ॥

[वृहद्द्रव्य संग्रह टीका गाथा]

अर्थात्—मङ्गलाचरण, निमित्तकारण, प्रयोजन, श्लोक संख्या, ग्रन्थ का नाम और कर्त्ता-इन छः अधिकारों की व्याख्या करके ग्रन्थ का प्रारम्भ करना चाहिये।

इस लिये सर्व प्रथम " नत्वा वीरं जिनेश्वरम् " पद से मङ्गलाचरण किया, पश्चात् " गुणाना विस्तरं वक्ष्ये " इत्यादि पदों से द्रव्य के कथन करने को प्रतिज्ञा की है, जिसका प्रयोजन " सा च किमर्थम् " इत्यादि द्वारा आगे स्पष्ट किया है। इसमें निमित्त कारण बाल बुद्धि मुमुक्षु भव्यजीव है। नाम इस ग्रन्थ का आलाप पद्धति है। ग्रन्थ प्रमाण (?) है। ग्रन्थकर्त्ता श्री मद्देवसेन मुनि हैं। इस प्रकार इसके छः अधिकार कहे।

इसी का विस्तार इस प्रकार है। (१) वर्तमान कल्प-काल के (जो १० कोड़ा* कोड़ी का उत्सर्पिणी और १० कोड़ा

---

* कोड़ को कोड़ से अर्थात् १००००००० × १००००००० गुणा करने से जो प्रमाण होता है, उसे कोड़ा कोड़ी या कोटा क्रोटि कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोड़ी का अव सर्प्पिणी एवं २० कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होता है।) जब ६ उत्सर्प्पिणी और ६ अवसर्प्पिणी के ऐसे कुल १८ कोड़ा कोड़ी सागर भोग-भूमि के व्यतीत होगये, तब कर्म-भूमि का प्रारम्भ हुआ। इन १८ कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण बहु संख्यक काल में केवल भोग-भूमि की रीति का प्रचार रहने से मोक्ष मार्ग इस भरत क्षेत्र में बन्द हो रहा। जब इस भोग भूमि का अन्त आया और कर्म भूमि का प्रारम्भ हुआ, तब जघन्य भोग भूमि (सुखमा-दुखमा) काल के अन्त में क्रम से १४ कुलकर (मनु *) हुये। इन में चौदहवें कुलकर श्री नाभि राजा के पुत्र, प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव भगवान हुये। युग की आदि में आपने अपने (गर्भ हो से उत्पन्न) मति श्रुत अवधि ज्ञानों के द्वारा राज्यावस्था में कर्म भूमि की रीति भांति बता कर प्रजा को ऐहिक दुखों से छुड़ाया। पश्चात् स्वयं बुद्ध भगवान् ने आप ही मोक्ष मार्ग की साधक तम स्वरूप दैगम्बरी दीक्षा धारणकर तीव्र तपश्चरण द्वारा घाति कर्म चतुष्टय को घात कर केवल ज्ञानादिस्व चतुष्टय को प्राप्त करके समस्त देशों में विहार किया और अनादि से भूले हुए मुमुक्षु भव्य जीवों को अपनी दिव्य ध्वनि द्वारा मोक्ष मार्ग का उपदेश करके पारलौकिक (मोक्ष) सुख प्राप्त करने के सम्मुख किया। इस प्रकार बहुत काल तक भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ) का

---

* मनु आदि पुराण पुरुषों के चरित्र, तथा काल की संख्या और प्रवृत्ति आदि बातें जानने के लिये महापुराण, हरिवंश पुराण आदि पुराणों को जानना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थ चलता रहा। पश्चात् धर्म का विच्छेद होने लगा। तब अजितनाथ आदि और भी २२ तीर्थंकर हुए, जिन्होंने उसी प्रकार मोक्षमार्ग का यथार्थ उपदेश करके धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति की। पश्चात् जब चतुर्थ काल (दुखमा सुखमा के केवल ७५ वर्ष ८½ माह शेष रहे) तब अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी (जिनका सार्थक पञ्च नामों द्वारा इसी ग्रंथ के आदि में भाषा में मङ्गल किया है। और ग्रन्थकार ने भी "नत्वा वीरं जिनेश्वरम्" इत्यादि कहके मङ्गल किया है) हुए। आपने कुमार वय में ही मार (काम) को मार कर गृहस्थपने का भार ही नहीं उठाया, और केवल ३० वर्ष की कुमार अवस्था में दैगम्बरी दीक्षा धारण करली। पश्चात् १२ वर्ष तक मौन सहित तत्पश्चरण करके ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों को नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और तब अनेक देशों में विहार करके ३० वर्ष तक मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया। इस प्रकार कुल ७२ वर्ष आयु के पूर्ण करके वे मगध देश के पावापुर नगर के उद्यान से, जब कि चौथे काल के केवल ३ वर्ष और ८½ माह शेष रह गये थे, कार्तिक कृष्णा अमावस्या को प्रातःकाल विनश्वर शरीर को छोड़ कर परमधाम (सिद्ध-पद) को प्राप्त हुए। वर्तमान समय में जो धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति हो रही है, वह श्री महावीर स्वामी के उपदेश हो का फल है। अतएव यह उनका ही तीर्थ कहाता है। इसीलिये ग्रंथकर्ता ने भी अपने साक्षात् उपकार करने वाले श्री वीरनाथ प्रभु का ही गुण स्मरण तथा नमस्कार रूप से मङ्गलाचरण किया है। यद्यपि महावीर भगवान ने वही उपदेश किया है, जो ऋषभादि २३ प्रभुवों ने किया है, इसलिये वीर शब्द से जगत की पीर हरने वाले और अनादि काल के लगे हुए कर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले ऐसे समस्त तीर्थंकरों का भी मङ्गलाचरण किया गया है। मङ्गलाचरण के हेतु पहिले मङ्गलाचरण करते हुए बता चुके हैं, अतएव यहां फिर से नहीं बताये हैं। इस प्रकार प्रथम मंगलाचरण अधिकार हुआ।

(२) यद्यपि द्रव्यों के स्वरूप कथन करने वाले अनेकों महान् ग्रन्थ पूर्वाचार्यों ने पहिले ही रच दिये हैं, तथापि बाल बुद्धि अर्थात् अल्प बुद्धि वाले मुमुक्ष प्राणियों का उन ग्रन्थों में प्रवेश नहीं हो सकने के कारण वे सम्यग्ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। अतएव उनको सरलता से समझाने के लिये इस ग्रन्थ की रचना की गई है। इसमें निमित्त कारण ये बालबुद्धि मुमुक्ष जन ही हैं।

(३) ग्रंथ बनाने का प्रयोजन ग्रंथकार की प्रतिज्ञा से स्पष्ट हो गया है। अर्थात् यह जीव (जो आगे वर्णन किये जाने वाले द्रव्यों में से एक चैतन्य द्रव्य है) द्रव्य अन्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल इन ५ अजीव द्रव्यों से भिन्न स्वभाव व लक्षण वाला चैतन्य द्रव्य है। शेष पांच द्रव्य जड़ व अचेतन हैं। परन्तु यह जीव अनादि कर्म बन्ध के कारण मोहित हुआ स्वस्वरूप को नहीं जान कर पुद्गलादि पर पदार्थों तथा उनके भावों में रंजायमान हो रहा है। और इसलिये उन में तन्मय हुआ, अपने राग द्वेष मोहादि भावों के द्वारा कर्म के आस्रव और बंधरूप जाल को पूरकर "मकड़ी के समान" आप ही उसमें फँसता और विपाक काल में उन कर्मों के उदय जनित फल सुख किंवा दुखों में मग्न होकर इष्ट अनिष्ट कल्पना करतारहता है। ऐसा करने से इसको कभी भी कर्म बन्धन से छुटकारा नहीं हो सकता। जैसे कंडु (खाज) रोग वाला मनुष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाज को खुजलाता . श्रा अपने को सुखी समझ कर उसे अधिकाधिक खुजलाता है. परन्तु ज्यों ज्यों वह उसे खुजलाता है, त्यों त्यों खुजली तथा खुजलाने से उत्पन्न हुई पीड़ा और भी बढ़ती जाती है, किन्तु रोग से छुटकारा तो नहीं होता है। इसी प्रकार यह मोही, अज्ञानी जीव अपने ज्ञानानन्द मय अविनाशी चैतन्य स्वरूप आत्मा को न जान कर कर्म के उदय से उत्पन्न हुई रति आदि कषायों के वशवर्ती होकर स्पर्शनादि पंच इंद्रियों की विषय रूपी खाज को खुजलाता अर्थात् सेवन करता है, परंतु अग्नी में ईंधन डालने से जैसे कभी भी उसका उपशमन नहीं होता, उसी प्रकार यह विषय रूपी खाज, खुजलाने-सेवन करने से कभी नहीं मिटती,किन्तु उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। इसके बढ़ने से राग द्वेषादि भी बढ़ते रहते और कर्मबन्ध भी होता रहता है। अतएव इसको इसके फल स्वरूप चारों गति सम्बन्धी चौरासी लक्ष योनियों में १ कोड़ा कोड़ी और २ लाख साड़े निन्नियानवें कुल कोड़ि रूप स्वांग बनाकर नाचना पड़ता है अर्थात् जन्म और मरण करना पड़ता है। इन जन्मों और मरणों में भी, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, रोग, शोक, भय तथा ग्लानि से पीड़ित होता हुआ, संक्लेश भावों के द्वारा अधिकतर पाप कर्मों को बांध कर और नरक निगोद तिर्यञ्च आदि अशुभ गतियों में ही भ्रमण किया करता है। अनादि काल से प्रथम तो यह जीव निगोद ही में रहा। जहां घनागुल के असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहना को धारण कर करके श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण आयु को प्राप्त कर जन्म मरण करता रहा। इतना ही नहीं एक शरीर के स्वामी रूप से अनन्तानन्त जीव उस क्षुद्र काय में एक साथ जन्म,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मरण, अहार और श्वासोच्छ्वास लेते रहे, वहां इस जीव के ज्ञान की इतनी मंदता हो गई कि, " अक्षर के अनन्तवें भाग " मात्र ज्ञान ही निरावरण रहा। इसलिये वहाँ इसके दर्शना ग्रहण की अयोग्यता ही रही। पश्चात् कोई काल लब्धि के योग से यदि निगोद से निकला तो पृथ्वी, जल, वायु प्रत्येक वनस्पति और अग्निकायों (पंच स्थावरों) में उत्पन्न हुआ, वहां भी जड़वत् स्वरक्षा तक भी करने में असमर्थ रहा, जहां केवल " कर्म फल चेतना " की ही मुख्यता रही।

इससे आगे यदि कदाचित् चिंतामणि सदृश त्रस पर्याय पाई, तो दो इन्द्री लटादि, ते इन्द्री जूं, खटमल, चींटी आदि चौ इन्द्री मक्खी भ्रमर आदि, तथा असैनी, पञ्चेन्द्री आदि पर्यायों में उत्पन्न होता रहा। यद्यपि यहां कुछ कर्म चेतना सी अवश्य प्रतीत होने लगी, परंतु वह नहीं जैसी ही रही। क्यों कि मन के अभाव में दर्शनादि ग्रहण नहीं कर सकने से फिर भी अपना हित नहीं कर सका। यदि कोई मंद कषायादि होने के कारण कदाचित सैनी पशु हुआ और सबल हुआ तो अन्य प्राणियों को मार मार कर खाया, और निबल हुआ तो औरों के द्वारा खाया गया। यद्यपि यहां कर्म चेतना विशेष रूप प्रकट हो गई तो भी अन्तरंग की तीव्र कषायों के उदय से और बाह्य दर्शनादि निमित्त कारणों के अभाव से संसार के कारण तीव्र कर्मबन्ध ही किये। यदि नरक में गया तो वहां समस्त कारण संक्लेशता बढ़ाने वाले ही होने से, तथा कषायों के तीव्र उदय और उपदेश के अभाव से पाप ही का बंध करता रहा। यदि देव हुआ तो यहां भी विषय कषायों की तीव्र आकांक्षा तथा दूसरों के दिव्य भोगादि सामग्री को देख देख कर झूरना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि मानसिक दुःखों से पीड़ित हुआ जिससे कर्मबन्ध ही (संसार के बढ़ाने वाले) किये। इस प्रकार इन तीनों गतियों की संक्षिप्त व्यवस्था हुई, यदि मनुष्य भी हुआ तो भील मलेच्छ आदि नीच कुल अथवा ब्राह्मण वैश्य आदि उत्तम कुलों में भी उत्पन्न हुआ तो वहाँ तीव्र मिथ्यात्व तथा कषायों के उदय से दर्शनादि का ग्रहण नहीं किया या ऐसे स्थानों में हुआ जहां दर्शनादि का संयोग मिलना ही कठिन है। अथवा इतना मंद क्षयोपशम हुआ कि दर्शनादि पाने पर भी सूक्ष्म तत्वों के समझने की शक्ति प्रगट नहीं हुई इत्यादि कारणों से प्रतिबोध को न पाकर यों ही संसार में "अपने स्वरूप को जाने बिना ही" अनादि काल से अनन्त पंच परिवर्तन किये और जब तक यह स्व-स्वरूप को जानकर उसमें स्थिर न होगा, तब तक न जाने कितने पञ्च परिवर्तन रूप संसार में यों ही भटकता रहेगा। देव और नरक इन दो गतियों में यद्यपि कर्म चेतना का पूर्ण प्रगटपना होता है और समस्त (चारों) प्रकार के देवों तथा तीसरे नरक तक के नारकियों को किसी प्रकार दर्शनादि का निमित्त, दर्शनादिलब्धि के द्वारा मिल भी सकता है,सो इनमें इस प्रकार तथा नीचे के चार नरकों में भव स्मरण तथा वेदना चिंतवन के कारण से या पूर्व दर्शनादि का स्मरण होकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति किसी निकट भव्यजीव को भी हो सकती है, परन्तु वहां संयम लेने की योग्यता नहीं होने से, साक्षात् मोक्ष के कारण स्वरूप चारित्र को धारण नहीं कर सकता है। इसी प्रकार तिर्यंच पर्याय में भी सम्यग्दर्शन तथा देश चारित्र भी धारण कर सकता है, परन्तु सकल चारित्र का उसमें भी असम्भवपना (अभाव) है, इस लिये एक मनुष्य पर्याय ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसी है, कि जिसमें इस जीव को सब प्रकार की योग्यता प्राप्त होती है। यद्यपि वर्तमान क्षेत्र तथा काल में साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है तो भी प्राणियों को उद्यमहीन होने की आवश्यकता नहीं है,क्यों कि पुरुषार्थ करने से यदि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाय और अपने द्रव्यक्षेत्र, काल तथा भावों की अनुकूलता के अनुसार, ख्याति लाभ पूजादि की चाह न रख-कर केवल स्वरूप साधन की दृष्टि रखते हुए, देश संयम या सकल संयम का साधन किया जाय तो कल्पवासी देवों में उत्पन्न हो सकता है, तथा कितनेक काल वहां के सुखों का अनुभव करके वहाँ से चय कर विदेह क्षेत्र में मनुष्य हो, संयम धारण करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है और यदि कदाचित् सम्यग्दर्शन न भी हुआ तो अपने भद्रपरिणामों (मन्द कषायों) के निमित्त से, विदेह क्षेत्रों में उत्पन्न होकर साक्षात् जिनेन्द्र की दिव्य ध्वनि के द्वारा उपदेश सुनकर तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान तथा चरित्र को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

तात्पर्य—उद्यम करना निरर्थक नहीं जाता है, इस लिये मुमुक्षु जीव सदा उद्यमवन्त रहते हैं और बुद्धिपूर्वक सम्य-ग्दर्शनादि की प्राप्ति का उपाय (उद्यम) तत्व ज्ञान प्राप्त करना है। वह तत्व ज्ञान, न्याय व्याकरण साहित्यादि के अभ्यासी विद्वानों को तो आगम ग्रन्थों के पठन पाठनादि से सहज ही हो सकता है, परन्तु जो अधिक अवस्था हो जाने तथा न्याय व्याकरणादि के नहीं जानने के कारण अध्यात्म ग्रन्थों में प्रवेश नहीं कर सकते, ऐसे तत्व जानने के अभिलाषी जीवों के हितार्थ ही यह आलाप पद्धति अर्थात् द्रव्यानुयोग प्रवेशिका नामक ग्रन्थ की रचना की गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—यह संसारी जीव अनादि कर्म बन्ध के कारण राग द्वेष मोह के वशीभूत हुआ सत्यार्थ तत्वों के स्वरूप को नहीं जानने से पर पदार्थों और उनके भावों में अपनत्व बुद्धि करता हुआ नवीन नवीन कर्म बन्ध करता, तथा उनके फल दुख सुखादि भोगता रहता है। प्रथम तो अनन्त भवों में इस को तत्व ज्ञान प्राप्त करके स्वतत्त्व (आत्मा) की पहिचान करने योग्य ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय को क्षयोपशम, तथा भावों की विशुद्धि ही नहीं प्राप्त होती, और कदाचित् यह साधन मिले भी तो, दर्शनादि का निमित्त मिलना बहुत कठिन है।

इसके सिवाय वर्तमान काल में सच्चे वीतरागी गुरुओं का तो अभाव ही होगया है। कतिपय पुरुष जो कुछ संयमी का रूप धारण किये दिखाई देते हैं, उनमें ज्ञान की मंदता तथा मोह की अमंदता होने से उनके द्वारा यथार्थ उपदेश की प्राप्ति नहीं हो सकती है, तथा जो थोड़े से पढ़े लिखे पुरुष देखे भी जाते हैं तो उनमें काल दोष से संयम के भाव जाग्रत नहीं होते। इस लिये चारित्र के अभाव से उनके उपदेश का आत्मा पर प्रभाव नहीं पड़ता। जैन धर्म का तत्व गहन है तथा आगम ग्रन्थ संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं में हैं, इस लिये न्याय व्याकरणादि के ज्ञान हुए बिना इन ग्रन्थों का सार जानना कठिन है। सो जिन्हों ने बाल्यावस्था में अपनी अनुकूल परिस्थितियों के न होने से इनका अभ्यास नहीं किया है, उन मुमुक्षु जीवों को ऐसे सरल भाषा ग्रन्थों के स्वाध्याय से तत्वों का बोध सरलता से हो सकता है, औ र इन नवतत्वों की उलझन में से अपने आत्म तत्व को प्रथम पहिचान कर उसका दृढ़ श्रद्धान कर सकते हैं। और संशय ', (किसी पदार्थ में यह ऐसा है या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यही है अथवा अन्य प्रकार है या अन्य है, ऐसे भ्रमरूप अनेक कोटि को स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं, जैसे किसी सफेद वस्तु को देख कर यह सीप है या चांदी ऐसा ज्ञान होना) विपर्यय[२] (विपरीति ज्ञान होजाना जैसे चांदी में सीप का निश्चय होजाना विपर्यय कहाता है) और अनध्यवसाय[३] (जानने की इच्छा के अभाव में अनिश्चित ज्ञान को जैसे मार्ग चलते हुए कंकर आदि का स्पर्श होने पर कुछ होगा, ऐसे ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं।)

तीन दोष रहित भेदाभेद पूर्वक पदार्थों के सामान्य विशेष स्वरूप को भले प्रकार जान कर स्वात्मा के श्रद्धान को दृढ़तम कर सकता है तथा आगम, अनुमान, प्रमाणादि तथा स्वानुभवन से जैसा स्वात्मतत्व का निश्चय श्रद्धान विज्ञान किया है। उसी प्रकार उसकी प्राप्ति के मार्ग में (उपाय में) प्रवर्त हो सकते हैं; जिससे संसार दुखों से छूट कर सच्चे, स्वाधीन अक्षय, अनन्त निराकुल रूप सुख को प्राप्त हो सकते हैं। इसी अभिप्राय से इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

(४) ग्रन्थ का नाम आलाप पद्धति है, सो आलाप नाम शब्दोच्चारण करने और पद्धति नाम विधि या रीति का है। अर्थात् बोलने (चर्चा करने) की रीति को ही आलाप पद्धति कहते हैं। यद्यपि संसारी मनुष्य, काम, भोग और बंध की कथायें करने में तो प्रायः सभी वाचाल होते हैं, परन्तु जब कभी वे किसी धर्म स्थल में (जहां तत्वोपदेश हो रहा हो) पहुँच जाते हैं, और उस विषय में सर्वथा अज्ञानी होने से वे वहां या तो बैठते ही नहीं, और यदि बैठ भी जाँय तो समझ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न सकने के कारण या तो अवसर पाकर वे वहां से उठ जाते हैं, या बैठे बैठे नींद की झपकियां लिया करते हैं, इस लिये ऐसे भोले मुमुक्षु जीवों को भी तत्व चर्चा में रुचि हो जावे, तथा वे भी इन सभाओं वा ग्रन्थों का लाभ ले सकें, ऐसे मनुष्यों के लिये यह ग्रन्थ योग्य बनाने में समर्थ होने से इसका नाम आलाप पद्धति (द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका) सार्थक ही है।

(५) मूल ग्रन्थ ३०० श्लोक प्रमाण हैं, और सूत्र रचना भी अति सरल है, इस लिये जो मुमुक्षु इनके मूल सूत्रों को कंठ करके भाषा टीका से अर्थ समझ लेंगे, वे बहुत सरलता से द्रव्यानुयोग के ग्रन्थों का अध्ययन कर सकेंगे।

(६) ग्रन्थ कर्त्ता श्री मद्देव सेनाचार्य हैं, जिन्होंने अपने ही प्रा० ग्रन्थनयचक्र के आधार पर इसकी रचना की है। आपके बनाये तत्व सारादि और भी कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

इस प्रकार छः अधिकारों का वर्णन किया। अब ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भ में ही ग्रन्थ कर्ता ने स्वयं प्रश्न उठा कर ग्रन्थ रचना का हेतु बता दिया है। अर्थात् आप लिखते हैं:—

यहां प्रश्न—सा च किमर्थम् ?

अर्थ—ग्रन्थ किस लिये रचा जाता है।

उत्तर—द्रव्य लक्षण सिद्धयर्थम् स्वभाव सिद्धयर्थञ्च।

अर्थ—द्रव्य के लक्षण और स्वभाव की सिद्धि के लिये ही इसकी रचना की गई है।

यहां प्रकरण वश प्रथम ही सामान्य स्वरूप कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तंच गुण पर्ययवत् द्रव्यम्
लक्षण मेतत सुसिद्धम विरुद्धम् ।
गुण पर्यय समुदायो द्रव्यं-
पुनरस्य भवति वाक्यार्थः ॥ ७८ ॥

(इति पंचाध्यायी प्र० अ०)

अर्थात्—गुण पर्याय जिस में पाये जांय, वही द्रव्य है। यह द्रव्य का लक्षण भले प्रकार विरोध रहित सिद्ध व स्पष्ट है। अथवा गुण और पर्यायों का समुदाय ही द्रव्य है, ऐसा भी वाक्यान्तर से इसका अर्थ होता है। तात्पर्य गुणों और पर्यायों के अखण्ड पिण्ड के सिवाय द्रव्य अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह गुण समुदाय रूप द्रव्य अनादि से है और अनन्त काल तक रहेगा। न तो कभी इसका उत्पाद हुआ और न कभी नाश ही होगा। इसके गुण कभी इससे न प्रथक हुवे और न होंगे, क्यों कि जैसे आतान वितान रूप तन्तुवों के समुदाय को पट कहते हैं। यदि वे तन्तु प्रथक् २ हो जावें तो पट का अभाव स्वतः हो जायगा, क्यों कि तंत्वुओं का समुदाय ही पर (वस्त्र) कहलाता है। इसी प्रकार यदि गुण प्रथक् २ हो जांय तो द्रव्य का अभाव हो जाय ? और द्रव्य के अभाव में गुणों का भी अभाव हो जाय। क्यों कि कहा है—"द्रव्याश्रया निर्गुणागुणाः" गुण उन्हें कहते हैं "जो स्वयं तो निर्गुण अर्थात् अन्य गुणों से रहित होवें और आप द्रव्य के आश्रय रहें" इस वाक्य के अनुसार द्रव्य को छोड़ कर गुण निराधार नहीं रह सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि व्यवहार में द्रव्य के स्वरूप को समझने के लिये कथंचित् संज्ञा[१], संख्या[२], लक्षण[३] और प्रयोजन[४] के वश से अखण्ड द्रव्य में भेद कथन (कल्पना) किया जाता है। परन्तु वास्तव में उनका प्रदेश (क्षेत्र व कालादि) से भेद नहीं है। अर्थात् समस्त गुण द्रव्य के समस्त प्रदेशों में व्याप्त रहते हैं जो एक गुण का प्रदेश है वही सब (अनन्त) गुणों का प्रदेश होता है, इस प्रकार से द्रव्य कथंचित् अपने स्वरूप की अपेक्षा अभेद भी है।

इस गाथा में आचार्य ने द्रव्य को स्वरूप भेदाभेद रूप से बताया है। अर्थात् पहिले तो गुण और पर्याय वाला जो हो वह द्रव्य है। इस कथन से गुण और पर्यायों से कथंचित् लक्षण के अपेक्षा भेद दर्शाया है और आगे गुण और पर्यायों का समुदाय हो द्रव्य है, ऐसा कह कर प्रदेशों की अपेक्षा अभेद स्वरूप दर्शाया है। तात्पर्य द्रव्य का स्वरूप कथन की अपेक्षा कथंचित् भेदाभेद स्वरूप ही है।

यद्यपि यह द्रव्य पर्याय की अपेक्षा उत्पन्न और नाश भी होता है, तो भी अपने अस्तित्व गुण को नहीं छोड़ता, अर्थात् अपने स्वरूप को स्थिर रखता हुआ अपने ही प्रदेशों में आप ही अपनी पूर्व अवस्था को छोड़ कर उत्तर (नवीन) अवस्था को समय समय प्रति धारण करता रहता है। इसी पूर्व अवस्था के त्याग को नाश (व्यय) नवीन अवस्था की प्राप्ति को उत्पाद और दोनों अवस्थाओं में अपने स्वरूप के नहीं छोड़ने को ध्रौव्य (अस्तित्त्व) कहते हैं। जैसे सुवर्ण की झारी थी, सुनार ने उसको तोड़ कर रक़ाबी बनादी। इस क्रिया में झारी का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाश (व्यय) और रक़ाबी का उत्पाद हुआ, परन्तु सुवर्ण द्रव्य दोनों अवस्थाओं में अपने पीतत्त्व आदि गुणों को लिये हुए जैसे का तैसा ही बना रहा । बस, इसी प्रकार का परिणमन सब द्रव्यों में सदाकाल समय समय प्रति होता रहता है, इसी परिणमन रूप अवस्थाओं को पर्याय कहते हैं और जो सदा द्रव्य के साथ रहते हैं वे गुण कहाते हैं, इन्हीं गुण पर्यायों के समुदाय को ही द्रव्य कहते हैं। इसी बात को सर्वार्थ सिद्धि में भी इस प्रकार कहा है:- "अन्वयिनो गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायाः, उभयैरुपेतं द्रव्यम्" अर्थात् गुण द्रव्य के साथ सदा तन्मय होकर रहते हैं । अर्थात् गुणों के रहने से ही द्रव्य का अस्तित्व रह सकता है और पर्यायों के विना द्रव्य कभी नहीं रहता । अर्थात् हर समय द्रव्य किसी न किसी अवस्था (पर्याय) में अवश्य ही रहेगा। इस प्रकार जो गुण और पर्यायों से अभिन्न अर्थात् इनके समुदाय रूप है, वही द्रव्य कहलाता है। गुण और पर्यायों में भेद केवल इतना ही है कि गुण तो सदा काल एक रूप से अनेक अनेक द्रव्यों के साथ हर अवस्था में रहते हैं और पर्यायें बदलती रहती हैं।

यद्यपि गुणों के समान पर्यायें भी भूत, वर्तमान और भविष्य काल की अपेक्षा पदार्थों में अनन्त होती है, परन्तु उनका अस्तित्व एक काल में एक ही रूप होता है। अर्थात् एक समय में एक ही पर्याय होती है, इस प्रकार द्रव्य में क्रम से होने वाली पर्यायों को उर्द्धवांश कल्पना कहते हैं और क्रम रहित सदा काल रहने वाले द्रव्य के अन्वयी गुणों को पृथक् पृथक् जानने को तिर्यगंश कल्पना कहते हैं । प्रत्येक द्रव्य अपने सामान्य तथा विशेष लक्षणों सहित होता है, इस लिये द्रव्य को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहिचानने के लिये उसके लक्षणों का जानना आवश्यक है, सामान्य लक्षण उसे कहते हैं जो समस्त द्रव्यों में समान रूप से पाये जाँय और विशेष लक्षण उसे कहते हैं जो अपने द्रव्य में ही पाये जांय और अपने से भिन्न भिन्न द्रव्य में न पाया जाय, अर्थात् जो अपने द्रव्य को अन्य द्रव्यों से भिन्न करा सके, जैसे जीव का लक्षण चेतना है, सो अन्य समस्त पुद्गल, आकाश, धर्म, अधर्म और काल इन अजीव द्रव्यों से भिन्न अपने जीव द्रव्य की पहिचान कराता है, क्यों कि यह चेतना गुण अन्य पांच अजीव द्रव्यों में नहीं है। न्याय दीपिका में भी कहा है "यथा व्यति कीर्ण वस्तु व्यावृत्ति हेतु र्लक्षणम्" अर्थात् परस्पर मिले हुए पदार्थों में से किसी एक को भिन्न बताने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं वह लक्षण दो प्रकार का होता है, "आत्मभूत मनात्म भूतंचेति" अर्थात् आत्मभूत और अनात्मभूत। जो वस्तु में तन्मय होकर रहे जैसे अग्नि में उष्णता, सो आत्मभूत और जो तन्मयो होकर न रहे,तो भी भिन्नता बताने वाला होवे जैसे दण्डी पुरुष का लक्षण दण्ड, यह अनात्मभूत्म लक्षण है। आत्मभूत लक्षण का तादात्म्य और अनात्म-भूत लक्षण का द्रव्य से संयोग सम्बन्ध होता है, संयोग सम्बन्ध छूट सकता है, परन्तु तादात्म्य सम्बन्ध कभी भी नहीं छूटता है, इस लिये इसे अनादि सम्बन्ध भी कहते हैं। द्रव्यों के साथ गुणों का तादात्म्य सम्बन्ध होता है, पर्यायों का सम्बन्ध मिलता छूटता रहता है।

इस लिये इनका द्रव्य के साथ प्रवाह रूप से अविष्वग-भाव एक विलक्षण प्रकार का संयोग सम्बन्ध भी कहा जाता है, यद्यपि द्रव्य हर समय किसी न किसी पर्याय में रहता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उस समय वह उससे तन्मय है, परन्तु अन्य समय में उसे छोड़कर अन्य पर्याय से तन्मय हो जाता है। इसी से इसको प्रवाह रूप से तादात्म्य या संयोग सम्बन्ध भी कहते हैं। यद्यपि ये दोनों लक्षण अपना भिन्न २ लक्षण रखते हैं तथापि द्रव्य को अन्य द्रव्यों से भिन्न कराने में समर्थ हैं, निर्दोष हैं। इसी से इनको लक्षण कहा है। इनके सिवाय जो लक्षण भास हैं, अर्थात् जो लक्षण के समान भासमान तो होवे, परन्तु भले प्रकार व्यावृत्ति (प्रथक्करण) करने में समर्थ न हो, उनको सदोष लक्षण कहते हैं, लक्षणाभास के तीन भेद न्याय-दीपिका में इस प्रकार कहे हैं। "त्रयो लक्षणाभास भेदाः, अव्याप्त मति व्याप्तम सम्भविश्चेति।", अर्थात् लक्षण भास, अव्याप्ति अति व्याप्ति और असंभव ऐसे तीन भेद रूप होता है, अति व्याप्ति उसे कहते हैं, जो लक्ष, (जिसका लक्षण कहना हो) में भी व्यापै, जैसे गाय का लक्षण पशुत्व कहना, सो पशुत्व गाय में भी होता है और महिषो घोड़ा ऊँट आदि में भी होता है।

इस लिये अन्य पशुओं से पशुत्व लक्षण के द्वारा गाय को भिन्न नहीं कर सकते हैं, यही सदोषता है, इसी प्रकार अव्याप्ति वह कहाता है, जो सम्पूर्ण लक्ष में न व्याप कर उसके एक देश में व्यापे जैसे गाय का लक्षण साँवलापन कहना सो यह साँवलापन (कालापन) सम्पूर्ण गायों में न होकर किसी २ में होता है। अतएव इससे गायों को इतर पशुओं से भिन्न नहीं करा सकते हैं, क्यों कि गाय काली भी होती है, पीली, लाल, सफेद आदि भी होती है और असम्भव उसे कहते हैं जिसका लक्ष में किसी भी प्रकार पाया जाना सम्भव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न होवे जैसे मनुष्य का लक्षण सींग वाला या गाय का लक्षण सूंड़ वाली कहना, सो मनुष्य के सींग या गाय के सूंड़ होना प्रत्यक्ष से बाधित है, न कभी हुए और न कभी होंगे ही, इस प्रकार इन दोषों से रहित जो द्रव्य का लक्षण कहा गया है वह यथार्थ है, अर्थात् गुण और पर्याय: वाला या गुण पयायों का समुदाय स्वरूप द्रव्य होता है और इस लक्षण में कोई दोष नहीं है, ये लक्षण समस्त द्रव्यों में सदा काल पाये जाते हैं। तत्वार्थ सूत्र में भी द्रव्य का लक्षण उपर्युक्त "गुणपर्यय वद्द्रव्यम्" गुणपर्याय वाला ही द्रव्य होता है, लक्षण बताया है। इसी लक्षण को जब और सक्षेप में वाक्यांतर से कहना होता है तो "सद्द्रव्य लक्षणम्" अर्थात् द्रव्य का लक्षण सत् है। ऐसा भी तत्वार्थ सूत्र में कहा है। यह वाक्यांतर ही है, भावान्तर नहीं है, क्योंकि कहा है "उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं-सत्" अर्थात् सत् उसे कहते हैं जो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य-वाला होवे। हम ऊपर बता आये हैं कि पदार्थ अपने स्वरूप को न छोड़ कर सदैव अपनी अवस्थाओं को बदलते रहते हैं, अर्थात् प्रति समय वर्तमान अवस्था को छोड़कर नवीन अवस्था को धारण करता रहता है, इसी अवस्था के पलटने को पर्याय या व्यय और उत्पाद कहते हैं और स्वरूप को नहीं छोड़ना अर्थात् सदा काल अपने गुणों को लिये रहना, इसी को ध्रौव्य कहते हैं। तात्पर्य यह है कि द्रव्य गुणों की अपेक्षा ध्रौव्य और पर्याय अपेक्षा उत्पाद और व्यय वाला है। अतएव वास्तव में उक्त दोनों लक्षण एकार्थवाची हैं। केवल विवक्षा वश ही वाक्यन्तर से कहे गये हैं, जैसे ऊपर गुण पर्यायवान् (भेद-विवक्षा से) और गुण पर्याय स्वरूप (अभेद विवक्षा से)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य का स्वरूप व लक्षण कहा है, इसी प्रकार से यह सत्तावान् (भेद विवक्षा से) और सत् स्वरूप (अभेद विवक्षा से) जानना चाहिये, सो पञ्चाध्यायी में इस प्रका कहा है :—

तत्वं सल्लक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धम्।
तस्मादनादि निधनं, स्वसहायं निर्विकल्पञ्च ॥ ८ ॥

[प्र० अ०]

अर्थात्—तत्व सत् लक्षण वाला या सत् स्वरूप ही है तथा स्वतः सिद्ध है, इस लिये अनादि निधन है, स्वसहाय से ही उत्पन्नध्वंसी तथा ध्रौव्यात्मक है तथा निर्विकल्प अर्थात् वचन के अगोचर कथञ्चित् अवक्तव्य भी है।

इस गाथा में आचार्य महाराज ने भेदाभेदरूप द्रव्य को सत् लक्षण वाला या सत् स्वरूप बताया है, इसके सिवाय यह भी बताया है कि द्रव्य स्वतः सिद्ध अर्थात् अपने स्वरूप से आप स्वयं सिद्ध है, पर की सहायता से इसकी सिद्धि नहीं है। इस लिये अनादि निधन है, किसी का किया हुआ नहीं है, सदा से है और सदा काल रहेगा, तथा अपने स्वरूप की सिद्धि में आप स्वयम् ही सहायक है और कथञ्चित् एक ही समय में नहीं कहे जाने की अपेक्षा अवक्तव्य (निर्विकल्प) भी है, इससे जो अन्यवादी कोई सर्वथा क्षणिक कोई सर्वथा नित्य कोई किसी का बनाया हुआ कोई पर द्वारा सिद्ध कोई सर्वथा विकल्पात्मक कोई आदि अन्तवाला कोई गुणगुणी के भेदरूप अथवा गुणगुणी को अभेद रू

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादि अनेक प्रकार का एकान्त से द्रव्य का स्वरूप बताते हैं, उनका खण्डन और सत्यार्थ तत्व के स्वरूप का विवेचन किया। इस विषय का विशेष खण्डन मण्डन, न्याय के ग्रन्थों, जैसे न्याय दीपिका, प्रमेय रत्नमाला, प्रमेयकमल मार्तण्ड, अष्ट सहस्री, राजवार्त्तिक, श्लोकवार्तिक, सप्तभंगीतरंगिणी आदि से जानना चाहिये। इस प्रकार संक्षेप में द्रव्य का स्वरूप और लक्षण कहा—

अब द्रव्यों के विशेष भेद व लक्षण कहते हैं।

द्रव्याणि कानि?

अर्थ—द्रव्य कौन २ हैं ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं।

जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि।

अर्थ—(१) जीव (२) पुद्गल (३) धर्म (४) अधर्म (५) आकाश और (६) काल ये छः द्रव्य होते हैं। अर्थात् न तो द्रव्य सात होते हैं और न पांच हो सकते हैं। क्यों कि जीव कहने से समस्त संसारी और सिद्ध जीव, पुद्गल से समस्त अणु व स्कंध स्वरूप पुद्गल और धर्म, अधर्म काल व आकाश कहने से स्वस्वनामवाची द्रव्य आगये। इसके जो और भी विशेष भेद किये जायेंगे वे सब इन्हीं में गतार्थ (समावेश) होजांयगे। यदि और भी संक्षेप में कहना चाहें तो जीव और अजीव इस प्रकार दो द्रव्य भी कह सकते हैं। इस में जीव कहने से समस्त शुद्ध (सिद्ध) और अशुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(संसारी) जीव और अजीव कहने से समस्त (जीव अर्थात् चेतना गुण रहित) जड़ अर्थात् पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पांच द्रव्य आगये। श्रीनेमिचन्द्राचार्य ने द्रव्य संग्रह के मंगलाचरण करते हुए–जीवमजीवं दव्वं जिनवर वषहेणं जेणीणदिदं। देविन्द विन्द वन्दं बन्दे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥ इत्यादि गाथा कही है। अर्थात् जीव और अजीव द्रव्यों के कथन करने वाले और देवेन्द्रों के समूहों से वन्दनीक ऐसे रिषभनाथ भगवान् को सदाकाल मस्तक झुका कर वंदना करता हूँ। इस लिये संक्षेप में कहना हो तो दो द्रव्य भी कह सकते हैं, परन्तु अति संक्षेप में कहने से सामान्य बुद्धि वाले जीव नहीं समझ सकते। और अति विस्तार से कहने में कथन बढ़ जाय, इस लिये मध्यम रुचिवालों के हितार्थ ही यहां ६ भेद कहे हैं। इस प्रकार भेद कह कर लक्षण कहते हैं।

सद्द्रव्य लक्षणम्–उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।

अर्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है। और सत् उसे कहते हैं जो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य करके युक्त है। यही लक्षण तत्वार्थ सूत्र में भी कहा है, इस का विशेष स्वरूप हम ऊपर कह आये हैं। यहां इतना और जानना कि ये उत्पादादि तीनों अवस्थायें द्रव्य अर्थात् सत् की ही होती हैं, और एक ही समय में होती हैं। अर्थात् सत् ही स्वयं उत्पादरूप, व्ययरूप और ध्रौव्यरूप एक ही समय में परिणमन करता है। न तो सत् से भिन्न कोई उत्पाद व्यय और ध्रौव्य वस्तु है, और न इनका भिन्न भिन्न काल ही है, जैसे सुवर्ण एक द्रव्य है, जिस समय सुवर्ण का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घड़ा टूटा, उसी समय तो उसके टुकड़े (कपाल) होगये और सुवर्ण दोनों अवस्थाओं में अपने पीतत्वादि गुणों सहित जैसा का वैसा ही बना रहा। इसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि, एक सुवर्णकार की दूकान पर तीन आदमी आये, उनमें एक को सुवर्ण के घट की आवश्यकता थी, दूसरे को घट के टुकड़े (कपाल) की और तीसरे को केवल सोने की आवश्यकता थी। तीनों ने अपनी २ आवश्यकताओं के अनुसार वस्तुएँ माँगीं। सुवर्णकार ने अपने पुत्र से सुवर्ण का घट (घड़ा) लाने को कहा। ज्योंही उस बालक ने घड़े को उठाया कि वह हाथ से छूट पड़ा और जोड़ उखड़ जाने से दो टुकड़े होगये। तब तीनों ग्राहकों के एक ही समय में साथ ही साथ हर्ष विषाद और मध्यस्थ ऐसे तीन रूप भाव होगये। अर्थात् कपाल(टुकड़े) चाहने वाले को हर्ष हुआ. घड़ा चाहने वाले को विषाद हुआ, और सुवर्ण सामान्य चाहने वाले को न हर्ष और न विषाद ही हुवा, किन्तु मध्यस्थता रही। क्यों कि घड़ा फूटने से घड़े वाले की इच्छा का विघात होने से विषाद हुवा, और कपाल चाहने वाले की इच्छा की पूर्ति होने से हर्ष हुवा। परन्तु सुवर्ण सामान्य चाहने वाले को दोनों अवस्थाओं में सुवर्णपना होने से न हर्ष और न विषाद, किन्तु मध्यस्थभाव रहा। यदि ये तीनों अवस्थाएँ एक ही द्रव्य को, एक ही समय न होतीं तो एक साथ तीनों पुरुषों के तीन भेद रूप भाव क्यों होते ? इत्यादि।

समय भेद मानने में बहुत दोष उपस्थित होते हैं, जिनको यहां विस्तार हो जाने के भय से नहीं लिखा है। विशेष पंचाध्यायी, समय-सार, पंचास्ति काय, प्रवचन सारादि ग्रन्थों से जानना चाहिये। प्रसंगवश यहां द्रव्य के सम्बन्ध में कुछ बातें जानना आवश्यक है, जिनका वर्णन आगे के कथन से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्ध रखता है। अर्थात् उक्त छः द्रव्यों में १ जीव द्रव्य चेतन और ५ अचेतन हैं। एक पुद्गल जीव ही रूपी अर्थात् मूर्तीक है। और शेष ५ द्रव्य अरूपी अर्थात अमूर्तीक हैं। काल द्रव्य के कालाणु परस्पर कभी नहीं मिलते अर्थात् वे रत्नों को राशि के समान सदैव प्रथक् २ रहते हैं, इसो से इनको अकाय और शेष को अस्तिकाय कहते हैं। यद्यपि पुद्गल द्रव्य भी जव अपनी शुद्ध अवस्था (परमाणु) रूप में होता है, तव वह भो अकाय है, परन्तु उसमें मिलन शक्ति होने के कारण उसे (अपचार से) कायवान् कहा है, क्यों कि जिस द्रव्य के प्रदेश परस्पर मिले होवें या मिल सकें वे कायवान् कहे जाते हैं। आकाश, धर्म, अधर्म, और १ जीव के प्रदेश, अनादि से परस्पर मिल रहे हैं, और सदैव मिले रहेंगे, किन्तु पुद्गल के परमाणु परस्पर मिलकर स्कंध रूप हो जाते हैं और बिछुड़ कर पुनः परमाणुरूप भी हो सकते हैं। अतएव ये पांचों द्रव्य अस्तिकाय हैं। परन्तु काल द्रव्य में मिलन शक्ति नहीं है, इसी से वह कायवान् नहीं है। जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य क्षेत्र से क्षेत्रांतर गमन रूप क्रिया करते हैं, इससे ये क्रियावान् हैं। और शेष चार द्रव्य निष्क्रयी हैं। इसी लिये इन दो (जीव और पुद्गल) द्रव्यों में स्वभाव और विभाव दोनों प्रकार का परिणमन होता है, परन्तु शेष चार द्रव्यों में केवल स्वभाव परिणमन हो होता है।

जिस समय जीव द्रव्य कर्मों के निमित्त से नर नारिकादि रूप तथा भाव कर्मों के निमित्त से क्रोधादि कषाय रूप परणमन करता है, तव वह उसकी **विभाव परणति** कही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती है। और जब समस्त कर्मों का अभाव होजाने पर अपने एक शुद्ध बुद्ध परमात्मस्वरूप सिद्ध अवस्था को प्राप्त होता है, तब वह उसकी स्वाभाविक परणति कहाती है। इसी प्रकार पुद्गल जब परमाणु रूप पर्याय को परणमता है, तब वह उसकी स्वभाव परणति और जब अन्य परमाणु से मिल कर स्कंधरूप परणमता है, तब विभाव परणति कहाती है। तात्पर्य पर के निमित्त से जो द्रव्यों में परिणमन होता है, उसे विभाव और जो पर के निमित्त विना ही स्वनिमित्तक परिणाम होता है, उसे स्वभाव परणति कहते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल में विभाव परणति नहीं होती है। ये चारों सदैव अपने शुद्ध स्वरूप में ही परणमन करते रहते हैं। इसी लिये वे कभी अशुद्ध नहीं होते, लोक में छोटे बड़े का व्यवहार होता है। कौन वस्तु किस वस्तु से कितने अंश छोटी या बड़ी है, यह ठीक ठीक जानने के लिये अखंड द्रव्यों में भी अंश कल्पना की जाती है। इस अंश कल्पना से द्रव्य के खंड नहीं हो जाते, परन्तु उसके परिमाण कर माप हो जाता है। इस लिये एक माप बनाने की आवश्यकता पड़ती है। इस माप को ही प्रदेश कहते हैं। पुद्गल का एक अविभागी परमाणु आकाश के जितने क्षेत्र को घेर कर रहता है, उतने क्षेत्र के माप को प्रदेश कहते हैं। इन प्रदेशों से अमूर्तिक द्रव्यों का माप किया जाता है, और मूर्तिक द्रव्य (पुद्गल) का माप उसके अविभागी परमाणुओं से होता है। मूर्तिक द्रव्य के अविभागी अंश को अणु या परमाणु और अमूर्त्तिक द्रव्य के अंश को प्रदेश कहते हैं। सो सर्वज्ञ के ज्ञान में अखंड १ आकाश के अनन्त प्रदेश, अखंड १ धर्म द्रव्य के, अखंड १ अधर्म द्रव्य के, अखंड २ प्रत्येक जीव द्रव्य के और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भिन्न २ समस्त कालाणुओं के समान असंख्यात २ प्रदेश तथा मूर्तिक पुद्गल के संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त अनन्तानन्त परमाणु देखें गये हैं। आकाश, धर्म तथा अधर्म ये तीनों द्रव्य प्रत्येक एक २ ही अखंड द्रव्य है, काल द्रव्य प्रत्येक प्रथक् २ लोकाकाश प्रमाण असंख्यात हैं। जीव अनन्तानन्त और पुद्गल संख्यात, असंख्यात तथा अनन्तानन्त हैं। पुद्गल द्रव्य के परमाणु ही मिलते तथा बिछुड़ते हैं, कालाणु मिलते ही नहीं हैं, शेष चारों द्रव्य अखंड ही रहते हैं, अनन्त आकाश के ठीक मध्य प्रदेश के जितने (असंख्यात) प्रदेशों में, धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव ये पांच द्रव्य रहते हैं, उतने आकाश को लोकाकाश और शेष को अलोकाश कहते हैं। ऐसा कहने से आकाश के खंड नहीं हो जाते हैं। वास्तव में एक ही आकाश के दो नाम कारणवश कहे जाते हैं। ये छहों द्रव्य परस्पर एक दूसरे के सहायक होते हैं। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य समस्त लोकाकाश को व्याप्त कर रहते हैं। और काल द्रव्य के प्रत्येक कालाणु लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर प्रथक् २ रत्नराशि के समान ठहरे हुए हैं, तथा एक जीव द्रव्य जब अपनी शुद्धावस्था में केवल समुद्घात के समय अपने आत्म प्रदेशों का विस्तार करता है, तो वे फैलकर लोकाकाश व्यापी होजाते हैं। और आठवें समय में पुनः संकोच रूप होकर शरीर के परिमाण हो जाते हैं, कर्मोपाधि रहित जीव की स्वाभाविक गति ऊर्ध्व गमन करना है, जब कि कर्म के वश से ऊर्ध्व, अधो व तिर्यक लोक में गमनागमन किया करता है। इसका विशेष कथन द्रव्य संग्रह आदि ग्रन्थों में देखना चाहिये। लोक का आकार संकोच विस्तार की अपेक्षा १॥ मृदङ्गाकार अथवा कमर पर हाथ रक्खे और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों पैर पसारे हुए मनुष्य के समान होता है। इसका क्षेत्रफल ३४३ घनराजू प्रमाण है, जो ऊर्ध्व, अधो और मध्य इन तीन भागों में बँटा रहता है। ऊर्ध्व लोक में कल्पवासी देव, मध्य में मनुष्य, पशु तथा कई जाति के व्यन्तर तथा ज्योतिषी देव, और पाताल (अधो) में व्यन्तर भवन वासी देव और नारकियों का निवास है। त्रैलोक्यसारादि ग्रंथों में विस्तार से इसका वर्णन किया है, वहां से जानना चाहिये। इस प्रकार यद्यपि ये छहों द्रव्य अपनी अपनी विशेष सत्ता तथा गुणों को लिये हुए अपने अपने स्वरूप में परिणमन करते हुए नित्य रूप से स्थित हैं, तो भी सामान्य तथा सभी द्रव्य स्वसत्ता लक्षण अर्थात् उत्पाद व्यय और ध्रौव्य पने को लिये हुए हैं। इसी को दूसरे शब्दों में यों भी कहते हैं कि गुण पर्याय पने को प्राप्त हैं।

इति द्रव्याधिकारः

अर्थ—इस प्रकार द्रव्य का अधिकार कहा अब और भी द्रव्यों के लक्षण कहते हैं।

लक्षणानि कानि ?

अर्थ—लक्षण कौन कौन होते हैं ? ऐसा प्रश्न होने से सूत्र कहते हैं।

अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वं, चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वममूर्तत्वं, द्रव्यणां दश सामान्य गुणाः प्रत्येकमष्टावष्टौ, सर्वेषाम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—अस्तित्व[1] (जिस शक्ति या गुण के निमित्त से द्रव्य का कभी भी नाश न हो, वह सदा अपने स्वरूप को स्थिर रख सके) वस्तुत्व[2] (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में अर्थ क्रिया हो, जैसे घड़े की अर्थ क्रिया अर्थात् उपयोगिता जल धारण करना है) द्रव्यत्वं[3] (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य सदैव एकसा न रह कर परणमन करता रहे अर्थात् पर्यायें या अवस्थायें वदलता रहे) प्रमेयत्वं[4] (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय होवे) अगुरु लघुत्वं[5] (जिस शक्ति के निमित्त से प्रत्येक द्रव्य अपने गुणपर्यायों में षट् गुणी हानि वृद्धि को लिये हुवे परणमता हुआ भी अपने द्रव्यपने को बनाये रहे, अर्थात् एक द्रव्य न तो कभी दूसरे द्रव्य रूप और न एक गुण अन्य गुण रूप कभी भी परणमन करे। न कभी एक द्रव्य के अनन्त गुण विखर कर प्रथक् प्रथक् हो जांय और न कभी संख्या में न्यूनाधिक ही हों सकें। अर्थात् जिस द्रव्य के जितने गुण हैं, उसमें सदैव उतने ही बने रहें, न कम होवें और न अधिक हो जावें। तथा जो द्रव्य जितना प्रमाण में है, उतना ही (अपेक्षा से) छोटा या बड़ा बना रहे। यह अगुरुलघु गुण सूक्ष्म और कथन में नहीं आने वाले द्रव्यों में प्रतिक्षण षड् गुण भाग × हानि, व वृद्धि को लिये हुए रहता है और आगम प्रमाण से जाना जाता है)

× प्रत्येक द्रव्य के प्रदेशों (आकार) अथवा प्रत्येक द्रव्य के गुणों में अंश भेद से जो प्रति समय, संख्यात[4] गुण हानि, असंख्यात[5] गुण हानि, अनन्त[6] गुण हानि, संख्यात[3] भाग हानि, असंख्यात[2] भाग हानि और अनन्त[1] भाग हानि। एवं षट् भेद रूप हानि और इसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदेशवत्व[६] (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कुछ न कुछ आकार या संस्थान अवश्य होवे) चेतनत्व[७] (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में पदार्थों का प्रतिभासकत्व अर्थात् जानपना होवे) अचेतनत्व[८] (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में अप्रतिभासकत्व अर्थात् जानपने का अभाव (जड़ पना) होवे, यह चेतनत्व गुण से विलक्षण स्वभाव वाला होता है) मूर्तत्व[९] (स्पर्श रस गन्ध वर्णपना होना) और अमूर्तत्व[१०] (स्पर्श रस गंध तथा वर्णपने का न होना अर्थात् मूर्तत्व गुण से विपरीत पना) ये दश सामान्य गुण हैं। इनमें से प्रत्येक द्रव्य में आठ आठ गुण होते हैं। सो किस २ द्रव्य में कौन २ गुण इनमें से नहीं होते, यह बात बताते हैं।

जीव द्रव्ये अचेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति।

अर्थ—जीव द्रव्य में अचेतनत्व अर्थात् ज्ञान हीनता या जड़पना और मूर्तत्व अर्थात् स्पर्श रस गन्ध वर्णपना नहीं होते हैं। इन दो गुणों के सिवाय शेष के आठ गुण होते हैं, अर्थात् चेतनत्व, अमूर्तत्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व और द्रव्यत्व ये आठ गुण होते हैं। इसी प्रकार—

प्रकार संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि और अनन्त भाग वृद्धि एवं छः प्रकार वृद्धि—इन बारह भेदों में से किसी न किसी भेद को लिये हुए जो अवस्था का पलटना होता है। यही अगुरुलघु गुण का कार्य है, कि वह ऐसा होते हुए भी द्रव्य को उसके स्वरूप से च्युत नहीं होने देता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुद्गल द्रव्ये चेतनत्वममूर्तत्त्वं च नास्ति।

अर्थ—पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व अर्थात् ज्ञानपना और अमूर्तत्व अर्थात् स्पर्श रस गंध वर्ण से रहितपना ये २ गुण नहीं होते हैं। शेष आठ अर्थात् अचेतनत्व, मूर्तत्त्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व गुण होते हैं और—

धर्माधर्माकाशकालद्रव्येषु चेतनत्वं मूर्तत्त्वं च नास्ति

अर्थ—धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यों में, चेतनत्व, अर्थात् ज्ञान पना और मूर्तत्व अर्थात् स्पर्श रस गन्ध वर्ण पना ये २ गुण नहीं होते हैं। इनके सिवाय शेष ८ गुण अर्थात् अचेतनत्व, अमूर्तत्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व होते हैं।

एवं द्विद्विगुणवर्जिते अष्टौ अष्टौ गुणाः प्रत्येक द्रव्ये भवन्ति।

अर्थ-इस प्रकार दो दो गुणों को छोड़ कर शेष के आठ आठ गुण प्रत्येक द्रव्य में होते हैं। उपर्युक्त गुण सामान्य रीति से सब द्रव्यों में पाये जाते हैं, अतएव इनको सामान्य गुण कहते हैं। इस प्रकार सामान्य गुणों को कह कर अब विशेष गुणों को कहते हैं।

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि, स्पर्शरसगन्धवर्णाः, गतिहेतुत्वं, स्थितिहेतुत्त्वं, अवगाहनहेतुत्वं, वर्तनाहेतुत्वं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वममूर्तत्वं च द्रव्याणाम् षोड़श विशेष गुणाः ।

अर्थ—ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गति हेतुत्व, स्थिति हेतुत्व, अवगाहन हेतुत्व, वर्तना हेतुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये सोलह द्रव्यों के विशेष गुण होते हैं। सामान्य गुण तो अनेक द्रव्यों में समानता से रहते हैं, परन्तु ये विशेष गुण अपने २ द्रव्यों में ही रहते हैं, दूसरों में नहीं पाये जाते। यथा—

षोडशविशेषगुणेषु जीवपुद्गलयोः षडिति।

अर्थ-इन सोलह गुणों में से जीव और पुद्गल के छः छः गुण होते हैं। जैसे—

जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि चेतनत्वममूर्तत्व मिति षट् ।

अर्थ-जीव के ज्ञान (जानने की शक्ति) दर्शन (ज्ञान होने से पहिले निर्विकल्परूप से (सामान्यावलोकन रूप पदार्थों को ग्रहण करने की शक्ति) सुख (आह्लादता या आनन्द वीर्य (वल) चेतनता और अमूर्तिकपना ये छः विशेष गुण होते हैं।

पुद्गलस्य स्पर्श रस गन्ध वर्णाः मूर्तत्वमचेतनत्व मिति षट् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—पुद्गल के स्पर्श (स्पर्शनेन्द्रिय के जिसके हलके भारी, शीत, उष्ण, नरम, कठोर, रूक्ष और चिक्कणपन इन आठ भेद रूप ज्ञान हो, वह शक्ति) "रस" रसना अर्थात् जिह्वा के द्वारा जिसके खट्टे, मीठे, कड़ुवे, कषैले और तीखे पने का ज्ञान हो, वह शक्ति) गन्ध (घ्राण अर्थात् नाशिका के द्वारा जिसका सुगन्ध अर्थात् इष्ट वास और दुर्गन्ध अर्थात् अनिष्ट वास का ज्ञान हो, वह शक्ति) वर्ण (नेत्र अर्थात् आंखों के द्वारा जिसके लाल, पीले, हरे, नीले, और श्वेत पने का ज्ञान हो, वह शक्ति) मूर्तत्व (जिसमें उक्त चार बातें हों अर्थात् जो इन्द्रियों के द्वारा जाना जाय) और अचेतत्व (चेतनपने का न होना) ६ गुण होते हैं।

इतरेषां धर्माधर्माकाशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः।

अर्थ—शेष, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चारों द्रव्यों में प्रत्येक के तीन तीन गुण होते हैं, यथाः—

धर्म द्रव्ये गतिहेतत्त्वममूर्तत्त्वमचेतनत्त्वमेते त्रयो गुणाः ॥

अर्थ—धर्म द्रव्य में गति हेतुपना (जिस शक्ति के निमित्त से, अपनी ही उपादान शक्ति से गमन करते हुए जीव तथा पुद्गल द्रव्यों को सहायता प्राप्त हो, अर्थात् यदि जीव तथा पुद्गल अपनी उपादान शक्ति से स्वयं चलना चाहें, तो उनको चलने में उदासीन रूप से सहकारी कारण हो, जैसे गमन करने की शक्ति रखने वाली मछली यदि गमन करना चाहे तो पानी सहकारी उदासीन निमित्त कारण होता है। नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चलने वाली मछली को प्रेरक होकर नहीं चलाता है) अमूर्तिक-पना (जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण न किया जाय) और अचेतनपना (ज्ञानादि रहित जड़पना) ये तीन गुण होते हैं।

अधर्म द्रव्ये स्थितिहेतुत्त्वममूर्तत्त्वमचेतनत्त्वामिति ॥

अर्थ—अधर्म द्रव्य में स्थिति हेतुपना (जीव तथा पुद्गल अपनी ही उपादान शक्ति से ठहरना चाहे तो उसको ठहराने में जो उदासीन निमित्त हो, जैसे मार्ग चलता हुआ श्रमित पथिक वृक्ष को शीतल तथा गहन छाया देख कर ठहरे अर्थात् ठहरना चाहे, तो उसको ठहरने में वृक्ष की छाया सहकारी उदासीन निमित्त कारण है। परन्तु वह छाया पथिक को प्रेरक होकर (यदि वह न ठहरना चाहे तो, नहीं ठहराती है) अमूर्तिकपना और अचेतन पना, ये तीन गुण होते हैं।

आकाश द्रव्ये अवगाहनहेतुत्त्वममूर्तत्वमेचतनत्त्वामिति ॥

अर्थ—आकाश द्रव्य में अवगाहन-हेतुपना अपने आप को तथा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल, इन पाँचों द्रव्यों को इस प्रकार से अवगाहना अर्थात् स्थान या अवकाश देना जिससे वे सब द्रव्य परस्पर अविरोध रूप से एक ही क्षेत्र में रह सकें) अमूर्तिकपना और अचेतनपना ये तीन गुण होते हैं।

कालद्रव्ये वर्तनाहेतुत्त्वममूर्तत्त्वमचेतनत्त्वामिति विशेष गुणाः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—काल द्रव्य में वर्तना हेतुता (स्वयं अपने आपकी तथा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश द्रव्यों की अवस्थाएँ जो समय २ बदलती रहती हैं। अर्थात् उनमें जो परिणमन होता रहता है, उसमें सहकारी निमित्त कारण होना) अमूर्तिकपना और अचेतनपना ये तीन विशेष गुण होते हैं।

अंतस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्य गुणाः विजात्यपेक्षया त एव विशेष गुणाः।

(इति गुणाधिकारः)

अर्थ—अन्त के चार चेतनपना, अचेतनपना, मूर्तिकपना और अमूर्तिकपना ये गुण * स्वजाति अपेक्षा सामान्य और विजाति अपेक्षा विशेष गुण कहाते हैं। जैसे चेतनपना अपने जाति अर्थात् सर्व जीव अपेक्षा सामान्य है अर्थात् सब जीवों में चेतनपना सामान्य रूप से होता ही है, परन्तु धर्म, अधर्म, काल, आकाश और पुद्गल की अपेक्षा विशेष गुण हैं अर्थात् इन पांच द्रव्यों में वह चेतनत्व गुण नहीं होता है। इसी प्रकार अचेतनपना जीव के विना पांच द्रव्यों में सामान्यपने होने से सामान्य और जीव में न होने से विशेष गुण कहाता है। इसी प्रकार मूर्तिकपना, अपने समस्त पुद्गल जाति की अपेक्षा सामान्य गुण और जीव, धर्म, अधर्म, काल तथा आकाश की अपेक्षा विशेष गुण कहाता है, क्यों कि वह केवल पुद्गल ही में होता है। इसी प्रकार अमूर्तिकपना अपने सजातीय धर्म, अधर्म, काल, आकाश तथा जीव की अपेक्षा सामान्य और पुद्गल विजातीय अपेक्षा विशेष गुण कहाता है।

* अपने द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा ऐसा समझना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार द्रव्य के गुणों का वर्णन करने वाला अधिकार पूर्ण हुआ।

अब पर्याय का कथन करते हैं।

गुण विकाराः पर्यायास्ते द्वेधा स्वभावविभाव पर्यायभेदात्।

अर्थ—गुणों के विकार अर्थात् परिवर्तन या परिणमन को पर्याय कहते हैं। वे पर्यायें दो प्रकार की होती हैं। (१) स्वभाव पर्याय (२) विभा वपर्याय।

भावार्थ—ऊपर बता आये हैं कि द्रव्य के सहवर्ती स्वभाव या शक्तियों व लक्षणों को गुण कहते हैं। इन्हीं गुणों में जो स्वभाव या विभाव अपेक्षा परिणमन होता है, उस एक २ समय वर्त्ती परिणमन को सूक्ष्म पर्याय कहते हैं, जो कि ऋजुसूत्रनय का विषय है। और कितनीकसमय की भूत तथा भविष्यत् सहित वर्तमान की पर्याय को मिला कर जो स्थूल रूप से कहा जाता है, उसे स्थूल पर्याय कहते कहते हैं। जैसे कोई मनुष्य समय समय प्रति अपनी आयु को भोग कर मरा और देव हुआ, इस वाक्य में जो समय समय आयु का भोगना है, वही समय २ का मरण है, उसे ही सूक्ष्म परिणमन कहते हैं। और अनन्त समयों का मरण एकत्रित कर कहना कि मनुष्य मरा और देव हुआ। यही मनुष्य से देव होना स्थूल परिणमन है। बिना सूक्ष्म परिणमन हुए स्थूल परिणमन नहीं हो सकता। इन्हीं सूक्ष्म और स्थूल परिणामनों को सूक्ष्म तथा स्थूल पर्यायें कहते हैं। इन भूतकाल की अनन्त पर्यायों स्वरूप गुण ही परिणमन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते आये हैं, वर्तमान की एक पर्याय में भी गुणों का ही परिणमन होता है और भविष्य की अनन्त पर्यायों स्वरूप गुणों ही का परिणमन होगा। ऐसा ही न्याय दीपिका में कहा है, यथाः—

"यावद्द्रव्यभाविनः सकलपर्यायानुवर्तिनो गुणाः"

अर्थात्-जो द्रव्यों की समस्त पर्यायों में अनुवर्ति होकर रहे, वह गुण कहाता है। इन्हीं अनन्त गुणों का समुदाय रूप अखण्ड पिंड द्रव्य कहाता है। इसलिये जब गुणों में विकार होता है तो द्रव्य में होना अवश्यंभावी है। इसलिये जैसे पृथक २ गुणों के विकारों को पर्यायें कहते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण गुणों के पिण्ड स्वरूप द्रव्य का भी जो समूचा परिणमन होता है, वह भी पर्याय कहाता है। सब द्रव्यों में जो प्रदेशत्व गुण बताया है, उसका अभिप्राय यह है कि द्रव्य सदैव किसी न किसी आकार में अवश्य रहता है, अतएव इस प्रदेशत्व गुण या द्रव्य के आकार में विकार या परिणमन होना, सो ही सम्पूर्ण द्रव्य का विकार या परणमन होना कहा जाता है, और इसी का द्रव्य या व्यंजन पर्याय कहते हैं। तथा प्रदेशत्व गुण के सिवाय अन्य समस्त गुणों के विकारों को जो कि अपने २ स्वरूप में ही परिणमन होता है, अन्य गुण के विकार का अन्य गुण के विकार से कुछ सम्बन्ध नहीं होता, उसे गुण या अर्थ पर्याय कहते हैं। ये पर्यायें स्वभाव और विभाव दो भेद रूप होती हैं। स्वभाव पर्यायें वे कहाती हैं, जिनमें अपना निमित्त आप ही हो, पर का निमित्त न हो, जैसे जीव द्रव्य की शुद्ध सिद्ध पर्याय तथा ज्ञान गुण की केवल ज्ञान पर्याय तथा पुद्गल द्रव्य की शुद्ध परमाणु पर्याय या गुणों में स्पर्श के रूक्ष और स्निग्धकण में से एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और शीत उष्ण में से एक रस, वर्ण और गंध का एक एक ऐसे सब पांच गुणों का शुद्ध परमाणु में होता। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनमें व इनके गुणों में स्वभाव पर्यायें ही होती हैं, क्यों कि ये सदा शुद्ध ही हैं।

विभाव पर्यायें, वे कहाती हैं जो पर के निमित्त से होती हैं, जैसे कर्मों के निमित्त से जीव द्रव्य की संसारी नरनारकादि पर्यायें, तथा ज्ञान गुण की मतिज्ञानादि पर्यायें, तथा पुद्गल द्रव्य की स्कंध पर्याय, अथवा स्पर्शादि गुणों की मिश्र पर्यायें इत्यादि। इन्हीं दोनों द्रव्यों में विभाव पर्यायें होती हैं। शेष द्रव्यों में नहीं होती हैं, इसी बात का खुलासा करते हैं।

अगुरुलघुविकाराः स्वभावपर्यायास्ते द्वादशधा, षड्वृद्धिरूपाः षड्हानि रूपाः। यथा—अनन्तभागवृद्धिः, असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभागवृद्धिः, संख्यात गुण वृद्धिः, असंख्यातगुण वृद्धिः, अनन्त गुण वृद्धिः, एवं षड्वृद्धिरूपास्तथा अनन्तभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः, संख्यातगुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः, अनन्तगुणहानिः एवं षड्हानि रूपा ज्ञेयाः॥

अर्थ—अगुरुलघुगुण के विकार को (जो स्वभाव से सब द्रव्यों में होता है) स्वभाव पर्याय कहते हैं। ये स्वभावपर्यायें बारह भेद रूप होती हैं, छः वृद्धि रूप और छः हानि रूप,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे (१) अनन्तभागवृद्धि (२) असंख्यातभागवृद्धि (३) संख्यातभाग वृद्धि (४) संख्यातगुणवृद्धि (५) असंख्यात गुण वृद्धि (६) अनन्त गुण वृद्धि इस प्रकार छः भेद रूप वृद्धि, (१) अनन्त भाग हानि (२) असंख्यात भाग हानि (३) संख्यात भाग हानि (४) संख्यात गुण हानि (५) असंख्यात गुण हानि (६) अनन्त गुण हानि, इस प्रकार छः भेद रूप हानि, सब मिल कर बारह प्रकारों में से किसी न किसी भेद को लिये हुए पदार्थों व उनके गुणों में जो स्वभाव से परिणमन होता रहता है, वे स्वभाव पर्यायें कहाती हैं।

विभावद्रव्यव्यंजनपर्यायाश्चतुर्विधा नरनारकादिपर्यायाः अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः ।

अर्थ—विभाग द्रव्यव्यंजनपर्याय चार प्रकार की होती हैं। जैसे नर, नारक, तिर्यञ्च व देव, अथवा चौरासी लाख योनि रूप होती हैं। इसका विस्तार गोमट्टसार ग्रन्थ में देखना चाहिये।

विभावगुणव्यंजनपर्याया मत्यादयः ॥

अर्थ—विभावगुण व्यंजन पर्याय मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय आदि ज्ञान, अथवा चक्षु अचक्षु तथा अवधि दर्शनादि को कहते हैं।

स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्यायाश्चरमशरीरात्किञ्चिन्न्यून सिद्धपर्यायाः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—स्वभाव द्रव्यव्यंजनपर्याय चरम शरीर से किंचित न्यून सिद्ध भगवान की शुद्ध पर्याय कहातो है।

स्वभावगुणव्यंजनपर्याया अनन्तचतुष्टय स्वरूपा जीवस्य।

अर्थ—स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय जीव के अनन्त चतुष्टय अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को कहते हैं।

पुद्गलस्य तु द्व्यणुकादयो विभावद्रव्य व्यंजनपर्यायाः ॥

अर्थ—पुद्गल द्रव्य की द्वि अणुक आदि विभाव द्रव्य व्यंजन पर्यायें कहाती हैं।

रसरसान्तरगन्धगन्धान्तरादिविभावगुण व्यञ्जनपर्यायाः।

अर्थ—रस से रसान्तर, गन्ध से गन्धान्तर, वर्ण से वर्णान्तर और स्पर्श से स्पर्शान्तर होना पुद्गल को विभाग गुण व्यंजन पर्यायें कहाती हैं।

अविभागिपुद्गलपरमाणुः, स्वभावद्रव्य व्यञ्जनपर्यायः ॥

अर्थ—पुद्गल का अविभागी परमाणु स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय कहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णगन्धरसैकैकाविरुद्धस्पर्शद्वयं स्वभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः ॥

अर्थ—पुद्गल द्रव्य के वर्ण रस गन्ध ये तीनों में से एक एक और स्पर्श के परस्पर अविरुद्ध (शीत, उष्ण में से एक और रूक्ष चिक्कण में से एक) ऐसे दो गुण, सब मिल कर कुल पांच गुण स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय कहाते हैं। हलका, भारी, नरम और कठोर ये चार स्पर्श के गुण परमाणु के परस्पर संघात (मिलने) से होते हैं, इस लिये स्वभाविक नहीं हैं। क्यों कि परमाणु ठोस होता है और अविभागी (सब से छोटा) अंश है, अतएव उस में न तो हलके भारी और न नरम कठोर की कल्पना होती है, क्यों कि वह एक प्रदेशी है, एक प्रदेशी को अप्रदेशी भी कहते हैं।

तात्पर्य—स्वभाव पर्यायें तो सभी द्रव्यों में होती हैं, परन्तु विभाग पर्यायें केवल जीव और पुद्गल द्रव्यों में ही होती हैं, इसी बात का विवेचन ऊपर किया गया है। अब आगे दृष्टान्त देकर यह स्पष्ट करते हैं, कि ये पर्यायें पदार्थों में किस प्रकार होती हैं। यथा—

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥१॥
धर्माधर्मनभःकाला अर्थपर्यायगोचराः।
व्यञ्जनेन तु संबद्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ ॥२॥

अर्थ—जैसे जल की तरंगें जल से उठ कर जल ही में लय होती रहती हैं, इसी प्रकार अनादि अनिधन द्रव्यों में भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय समय पर्यायें उत्पन्न होकर नष्ट होती रहती हैं, परन्तु जैसे तरङ्गों के उठने और लय होने में जल अपने जलपने से स्थित रहता है। उसी प्रकार इन द्रव्यों में भी पूर्व २ पर्यायों के व्यय और उत्तर २ पर्यायों के उत्पाद होते रहते भी द्रव्य अपने अपने २ स्वरूप से स्थित रहते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यों में केवल अर्थ (गुण) पर्यायें ही होती हैं। अर्थात् इनके प्रदेशत्व गुण (आकार का जिसे व्यंजन या द्रव्य पर्याय कहते हैं) का कोई इस प्रकार का विकार नहीं होता जैसा जीव तथा पुद्गल का उनकी अशुद्ध अवस्थाओं में होता रहता है, क्यों कि उन द्रव्यों का आकार सदैव एक सदृश, जैसा है, वैसा ही रहता है। इसी लिये वे उनकी अनादि नित्य शुद्ध पर्यायें कही जाती हैं। जीव द्रव्य भी जब कर्म से मुक्त होकर शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है तब उसका भी चर्म शरीर से किंचित न्यून आकार रहता है, वही सदैव उसी प्रकार रहता है, न्यूनाधिक नहीं होता है। यह सिद्धों की शुद्ध सादि नित्य पर्याय कही जाती हैं। पुद्गल को भी एक परमाणु रूप शुद्ध अवस्था में जो आकृति होती है, वही उसकी स्वभाव व्यंजन पर्याय है। इस प्रकार स्वभाव द्रव्य व्यंजन तथा स्वभाव अर्थ व्यंजन पर्यायें, तो छहों द्रव्यों में होती हैं, परन्तु जीव और पुद्गलों में विभावद्रव्यव्यंजन पर्यायें और विभावअर्थ व्यंजन पर्यायें भी होती हैं।

इति पर्यायाधिकारः गुण पर्यय वद्द्रव्यम् ॥

अर्थ—इस प्रकार गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है, इस सूत्र के अनुसार पर्यायों का कथन करने वाला अधिकार पूर्ण हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब यहां प्रसंग वश नयों का स्वरूप स्वर्ग-वासी विद्वद्वर्य पंडित गोपालदास जी वरैया के जैन सिद्धान्त दर्पण प्र० भा० के अनुसार लिखते हैं

गुणों के विकार अथवा द्रव्यों में अंश कल्पना को पर्याय कहते हैं।

वह अंश कल्पना दो प्रकार की होती है–देशांश कल्पना और गुणांश कल्पना।

देशांश कल्पना को, व्यंजन या द्रव्य पर्याय और गुणांश कल्पना को गुण या अर्थ पर्याय कहते हैं।

गुणांश कल्पना के दो भेद हैं, अर्थगुणपर्याय और व्यंजनगुणपर्याय।

इनमें ज्ञानादिक भाववती शक्ति के विकार को अर्थ गुण पर्याय और प्रदेशत्व गुण रूप क्रियावती शक्ति के विकार को व्यंजन व गुण पर्याय कहते हैं। अर्थात् प्रदेशत्व गुण के विकार को व्यंजन पर्याय और इसके सिवाय अन्य गुणों के विकार को अर्थपर्याय कहते हैं।

ये व्यंजन और अर्थ पर्यायें भी स्वभाव और विभाव के भेद से दो दो प्रकार की होती हैं। जो निमित्तान्तर के बिना होवें सो स्वभाव और जो निमित्तान्तर से होवें सो विभाव पर्यायें कहाती हैं। जैसे—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव द्रव्य में–शुद्ध जीव के अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य, पुद्गलद्रव्य में अविभागी परमाणु के स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण, धर्म द्रव्य में गति हेतुत्व, अधर्म द्रव्य में स्थिति हेतुत्व, आकाश द्रव्य में अवगाहना हेतुत्व और कालद्रव्य में वर्तना हेतुत्व। ये **स्वभाव** अर्थ गुण पर्याय कहाते हैं।

जीव द्रव्य में सिद्ध जोव के चर्म देह से किंचित् न्यून आकार में आत्म प्रदेशों का होना। पुद्गल द्रव्य में अनादि निधन कार्य रूप तथा कारण रूप पुद्गल परमाणु का होना। धर्म अधर्म आकाश और काल जिस २ प्रकार संस्थान से संस्थित हैं उनका उसी प्रकार से होना। यह **स्वभाव** अर्थ व्यंजन पर्याय कहाती है।

जीव द्रव्य में–मतिश्रुत अवधि मनः पर्यय तथा कुमति कुश्रुत कुवधि ज्ञान अथवा चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन आदि। पुद्गल द्रव्य में स्कन्धों के स्पर्श रस गन्ध और वर्ण। ये **विभाव अर्थ** गुण पर्याय कहाते हैं।

जीव द्रव्य में–संसारी जीव का शरीराकार परिणमन होना और पुद्गल में पृथ्वी अप् तेज वायु आदि नाना स्कंध रूप परणमन होना। सो विभाव अर्थ व्यञ्जन पर्याय कहाती है। पदार्थों में ये पर्यायें चार प्रकार से पाई जाती हैं (१) अनादि नित्य पर्याय जैसे धर्म अधर्म द्रव्यों का लोकाकाश प्रमाण संस्थान होना या सुमेरु अकृत्रिम चैत्यालय स्वर्ग नरकादि तथा लोक की रचना आदि (२) सादि नित्य पर्याय, जेसे सिद्ध पर्याय (३) अनादि सान्त पर्याय, जैसे भव्य जीव की संसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याय और (४) सादि सान्त पर्याय, जैसे पुद्गल स्कंधों का व परमाणुवों का मिलना बिछुड़ना, इस प्रकार पर्याय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ स्वभावः कथ्यन्ते ।

अर्थ-अब स्वभाव का कथन करते हैं।

अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्यस्वभावः अनित्यस्वभावः, एक स्वभावः, अनेकस्वभावः, भेद स्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्य स्वभावः, परमस्वभावः, द्रव्याणामेकादशसामान्य स्वभावाः ॥

अर्थ-१ अस्तिस्वभाव (अपने द्रव्य क्षेत्र काल और भाव अर्थात् स्व चतुष्टय की प्राप्ति से कभी च्युत नहीं होना जैसे अग्नि की उष्णता उस से कभी भिन्न नहीं होती) २ नास्ति स्वभाव (किसी काल में भी पर द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव रूप अर्थात् पर चतुष्टय रूप न होना, जैसे अग्नि में शीतलता का न होना) ३ नित्य स्वभाव (भिन्न २ अनेक पर्यायों में बदलते हुए भी यह वही है इस प्रकार द्रव्य की उपलब्धि अर्थात् प्रतभिज्ञान होना) ४ अनित्य स्वभाव (हर समय अपनी पूर्व २ अवस्थाओं को त्याग कर उत्तर २ अवस्थाओं रूप परिणमन होना) ५ एक स्वभाव (अपने एक स्वभाव का आधार रखना) ६ अनेक स्वभाव (अनेक गुणों क आधार भूत होना) ७ भेद स्वभाव (गुण गुणी संख्या संज्ञा लक्षण तथा प्रयोजन के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपेक्षा भेद रखना) ८ अभेद स्वभाव (प्रदेश अपेक्षा अभेदता रखना) ९ भव्य स्वभाव (मोक्ष प्राप्ति करने की शक्ति को व्यक्त करने रूप शक्ति रखना) १० अभव्य स्वभाव (मोक्ष प्राप्ति करने की शक्ति को व्यक्त करने की शक्ति का न रखना) ११ परम स्वभाव (पारिणामिक भाव की प्रधानता रखना) ये द्रव्यों के ११ सामान्य स्वभाव होते हैं।

चेतनस्वभावः, अचेतनस्वभावः, अनेकप्रदेश-स्वभावः एक प्रदेश स्वभावः मूर्तस्वभावः, अमूर्तस्व-भावः, विभावस्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्व-भावः, उपचरितस्वभावः, एते द्रव्याणां दश विशेष स्वभावाः ॥

अर्थ—१ चेतना स्वभाव (ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि का होना यह जीव के ही होता है, परन्तु असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा कर्म और नोकर्मों को भी कथंचित् चेतन स्वभाव वाले कर देते हैं) २ अचेतन स्वभाव (ज्ञानादि चैतन्य शक्तियों का न होना यह स्वभाव जीव के सिवाय अन्य ५ धर्म अधर्म आकाश काल और पुद्गलों में ही होता है। परन्तु असद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा से कथंचित् जीव को भी अचेतन स्व-भाव वाला कहदिया जाता है) ३ अनेक प्रदेश स्वभाव (बहुत प्रदेशीपना) ४ एक प्रदेश स्वभाव (एक प्रदेशीपना होना) ५ मूर्तस्वभाव (मूर्तीकपना होना यह केवल पुद्गल ही में होता है, परन्तु असद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा कथंचित कर्म सहित जीव को भी कह दिया जाता है) ६ अमूर्त स्वभाव (अमूर्तीकपना होना, यह पुद्गल के सिवाय शेष पांचों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यों में होता है) ७ विभाव स्वभाव (विभाव रूप परिणमन शक्ति का होना, यह जीव तथा पुद्गलों में ही होता है) ८ शुद्ध स्वभाव, ९ अशुद्ध स्वभाव और १० उपचरित स्वभाव (जिन में उपचार कथन बन सके) ये दश, द्रव्यों के विशेष स्वभाव होते हैं। इनमें से:—

जीव पुद्गलयोरेकविंशतिः ।

अर्थ-जीव और पुद्गल के इक्कीस इक्कीस स्वभाव ही होते हैं ।

चेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, विभावस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, एतैः पंचभिः स्वभावैर्विना धर्मादित्रयाणाम् षोड़श स्वभावाः सन्ति ॥

अर्थ—चेतना स्वभाव, मूर्तस्वभाव, विभाव स्वभाव, एक प्रदेशी स्वभाव और अशुद्ध स्वभाव इन पांच के विना धर्म अधर्म और आकाश इन तीन द्रव्यों में सोलह सोलह स्वभाव होते हैं।

तत्र बहु प्रदेशं बिना कालस्य पंचदश स्वभावः॥

अर्थ – और बहु प्रदेशी स्वभाव बिना शेष १५ स्वभाव काल द्रव्य के होते हैं ॥ सोही कहा है—

उक्तंच–एकविंशति भावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः।
धर्मादीनां षोड़श स्युः काले पंचदश स्मृताः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव और पुद्गल द्रव्यों में, इक्कीस, धर्म अधर्म और आकाश में सोलह तथा कालद्रव्य में १५ स्वभाव होते हैं।

भावार्थ—यद्यपि सभी द्रव्यों में अनंत अनंत धर्म स्वभाव होते हैं, परन्तु उनमें से विशेष प्रयोजनीय जान कर ही यहां संक्षेप में २१ स्वभाव बतलाये हैं, जब कि पदार्थों में अनंत धर्म होते हैं, इसलिये उनको कह कर बताने वाले (वाचक) शब्द भी अनन्त ही होते हैं और ये प्रत्येक वाचक शब्द नय कहाते हैं। प्रत्येक (वाचक) शब्द अपने ही (वाच्य) धर्म को बतलाता है तथापि वह अन्य (धर्म) वाच्य को बताने वाले अन्य वाचक शब्दों का विरोधी नहीं होता, किन्तु उसकी अपेक्षा रखता है। इसी अपेक्षा वाद को **स्याद्वाद** अथवा **अनेकांत** वाद कहते हैं।

स्यात् शब्द का अर्थ कथंचित् अर्थात् किसी अपेक्षा, और अन्त शब्द का अर्थ धर्म या स्वभाव होता है, इसलिये जो शब्द किसी अपने धर्म को बताते हुए, अन्य धर्मों की अपेक्षा रखता है, इसलिये उसको इस अपेक्षा को प्रगट करने के लिये अपने साथ स्यात् या कथंचित् पद को रखना पड़ता है। इस के रखने से, यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि इसमें यह धर्म तो है ही तथाऽपि और धर्म भी हैं! ऐसा कहने का कारण यह है कि पदार्थों में अनन्त धर्म हैं, और वे सब धर्म एक साथ एक ही समय में हैं, कोई आगे पीछे नहीं है, परन्तु वचन से तो एक बार एक ही धर्म कहा जा सकता है, सब एक साथ नहीं कहे जा सकते हैं। अतएव जो अपेक्षा, वाची शब्द स्यात् या कथञ्चित न लगाया जाय, तो विवक्षित पदार्थ का एक विवक्षित धर्म ही समझा जावेगा। तथा अन्य समस्त धर्मों का लोप हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जावेगा। ऐसी दशा में पदार्थ का पूर्ण या पदार्थ स्वरूप नहीं समझा जाकर अधूरा ही समझा जावेगा। परन्तु वस्तु का स्वरूप वैसा नहीं है। इसलिये वह कथन एकान्त कथन हो जावेगा। ऐसे एकान्त कथन को मिथ्या कथन कहा है। यथा- "एकान्त वाद दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त"। इत्यादि! (दौ० छः ढाला) इसी बात को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं।

जैसे—मोहनपुर में, एक सच्चिदानन्द राजा है, उसके सुमति कुमति दो रानियां हैं। दोनों से विवेक और मदन दो पुत्र हैं, उसकी एक क्षमावती बहिन और धैर्य नाम का भानजा है, मोहनचन्द्र और शिवनाथ उसके श्वसुर हैं। ज्ञानानन्द और विषयानन्द साले हैं। दया बेटी और दिगम्बर जंवाई हैं, विनयचन्द्र बहनोई और लोकनाथ पिता हैं इत्यादि उसका बहुत बड़ा परिवार है। अब यहां यह विचारना है, कि सच्चिदानन्द तो एक व्यक्ति है, परन्तु उसमें मोहनपुर को प्रजा की अपेक्षा राजत्व, सुमति कुमति अपेक्षा पतित्व, विवेक व मदन को अपेक्षा पितृत्व, क्षमा की अपेक्षा भ्रातृत्व, धैर्य की अपेक्षा मातुलत्व, मोहन या शिवनाथ को अपेक्षा. जामातृत्व; ज्ञानानंद विषयानन्द अपेक्षा बहनोईपना, दिगम्बर की अपेक्षा श्वसुरपना, विनयचन्द्र की अपेक्षा सालापना और लोकनाथ को अपेक्षा पुत्रपने का धर्म है। इस प्रकार से यद्यपि एक ही सच्चिदानन्द में प्रजा भार्या, पुत्र आदि की अपेक्षा राजा, पति, पिता आदि नाना धर्म पाये जाते हैं, जो कि सब साथ २ एक ही समय में हैं परन्तु वे सब एक ही समय में युगपत नहीं कहे जा सकते अतएव प्रत्येक विवक्षित धर्म के साथ स्यात् या कथंचित् शब्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगा देने से यह जाना जाता है कि और भी धर्म हैं और इस लिए अन्य धर्मों की विवित्ता न करने पर भी उनका अभाव नहीं माना जा सकता है। जैसे कहा जाय, सच्चिदानन्द कथंचित् राजा है, तो ऐसा कहने से यह ज्ञात होता है, कि सच्चिदानन्द कथंचित् राजा है, तो कथंचित् पति, पुत्र, पिता जंवाई आदि भी है। यदि यहां कथंचित् न लगा कर, केवल यह कहा जाय कि सच्चिदानन्द राजा ही है, तो उस में से पिता पुत्रादि धर्मों का लोप होजाय जो प्रत्यक्ष से विरुद्ध बात है। अतएव कथंचित् शब्द लगादेने से यह कोई विरोध नहीं रहता।

इसी विषय को अन्य ग्रन्थों में सात अंधे और हाथी के दृष्टांत से स्पष्ट किया है, "कि सात अंधे पुरुष हाथी देखने गये, सबने हाथी के भिन्न भिन्न अंगों पर हाथ रखकर उतना उतना व वैसा वैसा ही हाथी समझ लिया। जब वे परस्पर मिलकर हाथी का स्वरूप कहने बैठे, तो उनमें झगड़ा होगया और एक दूसरे को मिथ्यावादी कह कर मारने को उद्यत होगये। क्यों कि कोई कहता था कि हाथी मूसल जैसा होता है, कोई बोलता हाथी स्तंभ (खभे) जैसा होता है, कोई कहता हाथी सूप जैसा होता है, कोई कहता, हाथी विठा जैसा होता है, कोई कहता, हाथी लाठो जैसा होता है, इत्यादि जिस जिस को जो जो अंग स्पर्श करने से जैसा २ प्रतीत हुआ था, वे वैसा २ ही कहकर लड़ने लगे। इतने में एक पुरुष जिसने हाथी का सम्पूर्ण स्वरूप देखा था आगया और उनको सम्बोधन करके बोला—भाइयो! झगड़ने का कुछ काम नहीं है, क्यों कि वास्तव में हाथो न तो खम्भ समान है, न मूसल, लाठो न सूप, व विठा के समान ही होता है, किन्तु हाथी के पांच खंभे के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान, धड़, विठा के, सूंड़, मूसल के, पूंछ लाठी के, और कान सूप के समान होते हैं । और इन सब अंगों को मिलकर ही हाथी होता है। इस लिये एक २ (भिन्न २) अंग की अपेक्षा तुम सब का कहना ठीक है। परन्तु सम्पूर्ण स्वरूप की अपेक्षा सभी मिथ्या विश्वास कर रहे हो, इस लिये तुम इस इकअंगी (मिथ्या) विश्वास को छोड़ कर सर्वाङ्गी (सत्य) स्वरूप का श्रद्धान करो। जब अंधे मनुष्यों ने यह सुना, तो अपनी२ भूल को स्वीकार करके प्रेम पूर्वक मिल गये, और हाथी के सच्चे स्वरूप का ज्ञान भी सबको होगया । तात्पर्य सभी पदार्थ अनन्त धर्मात्मक हैं । इस लिये उनको उनके समस्त धर्मों सहित जानने के लिये अनेकान्त (स्याद्वाद) का आश्रय लेना आवश्यकीय है। जैन धर्म का सिद्धान्त इसी स्याद्वाद की नींव पर स्थित है,इसी से वह अडोल और परवादियों को अजेय है। जैनेतर धर्म एकान्त रूप वस्तु को प्रतिपादन करते हैं, अतएव उनके कहे हुए पदार्थों के स्वरूप में अनेकों प्रत्यक्ष बाधाएं उपस्थित होती हैं । ऐसा जानकर स्वपर पदार्थों का यथार्थ ज्ञान करने के लिये स्याद्वाद रूपी कसौटी पास रखना चाहिये।

अब यहां प्रसंगवश इस स्याद्वाद के सप्त भंगों का वर्णन करते हैं ।

स्याद्वाद को हम अधिक से अधिक सप्त भंगों या प्रकारों में बांट सकते हैं। जैसे स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, और स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये भंग एक ही पदार्थ में परस्पर विरोधी धर्मों को सिद्ध करते हैं, जैसे अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अनेकत्व आदि। विरोधी धर्म सापेक्ष रूप से एक ही पदार्थ में रहते हैं, इस लिये इनका कथन करने के लिए इनके साथ स्यात् पद लगाना आवश्यक है। यथा-स्यादस्ति जीवः, (स्व द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा कथंचित् जीव है, इस प्रकार अस्ति अर्थात् होना धर्म सिद्ध किया) स्यान्नास्ति जीवः (पर द्रव्य-क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा कथंचित् जीव नहीं है, इस प्रकार उसी जीव में नास्ति अर्थात् अभावपने को सिद्ध किया) ऐसे ये दो भंग बने। शेष के ५ भंग इन्हीं दो के विशेष (विधि निषेध के वश से बनते) हैं। जैसे जीव जिस समय स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से सद्भाव रूप है, उसी समय पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से असद्भाव रूप भी है, इस लिये दोनों धर्मों को क्रमशः कहने से बनता है, स्यादस्तिनास्ति जीवः (स्व पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा जीव कथंचित् है भी और नहीं भी) इस प्रकार ये दोनों धर्म जीव में एक ही समय हैं, परन्तु वचन से क्रम रहित युगपत नहीं कहे जासकते हैं, इस स्यादवक्तव्य जीवः (जीव कथंचित अवक्तव्य भी है) इसी प्रकार जब एक अस्ति धर्म के साथ अवक्तव्य धर्म को कहते हैं, तो स्यादस्ति अवक्तव्य जीव (जीव कथंचित् है भी और अवक्तव्य है)।

इसी प्रकार नास्ति धर्म को मुख्यता से जब उनके साथ अवक्तव्य धर्म को कहते हैं, तो स्यान्नास्ति अवक्तव्य जीवः (जीव कथंचित नहीं भी है और अवक्तव्य भी है) और जब युगपत दोनों धर्मों की अपेक्षा कहते हैं, तो स्यादस्तिनास्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवक्तव्य जीवः (जीव कथंचित् है भी और नहीं भी तथापि अवक्तव्य है) इसी प्रकार समस्त द्रव्यों के समस्त धर्मों तथा द्रव्यों पर लगा कर वस्तु के स्वरूप को साधना चाहिये।

ऐसा यहां स्याद्वाद को बताने वाले सप्त भंगों को संक्षेप में वर्णन किया, विशेष जानने के लिये सप्त भंगीतरङ्गणी ग्रन्थ में देखना चाहिये।

ते कुतो ज्ञेयाः ?

अर्थ—ऊपर कहे जो द्रव्यों के गुण स्वभाव तथा पर्यायादि धर्म कैसे जाने जाते हैं, अर्थात् इनका यथार्थ ज्ञान कैसे होता है ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं कि:—

प्रमाणनयविवक्षातः।

अर्थ—प्रमाण और नयों की विविक्षा से जाने जाते हैं। अब प्रथम ही प्रमाण का स्वरूप और उसके भेदों को कहते हैं।

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं।

अर्थ—सम्यग्ज्ञान को (जो ज्ञान पदार्थ का जैसा स्वरूप है, उसको वैसा ही हीनाधिकता तथा संशय विपर्यय और अनध्यवसायादि दोषों से रहित जानता है, उसे प्रमाण कहते हैं। इसी को श्रीमाणिक्यनन्दि आचार्य ने परीक्षामुख में स्पष्ट रूप से बताया है, यथा " स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् " अर्थात् अपने आपको तथा अपूर्वार्थ (स्व और अनिश्चित अर्थ दोनों) को निश्चय कराने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तद्द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात् ।

अर्थ—वह प्रमाण दो प्रकार का होता है प्रत्यक्ष और परोक्ष। इनमें प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का होता है। एक देश प्रत्यक्ष और दूसरा सकल प्रत्यक्ष यथा—

अवधिमनःपर्ययावेकदेशप्रत्यक्षौ

अर्थ—अवधि ज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान एक देश प्रत्यक्ष हैं, अर्थात् ये दोनों ज्ञान अपने २ आवरण कर्म के क्षयोपशम के अनुसार द्रव्य क्षेत्र तथा काल की मर्यादा लिये हुए रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानते हैं। इनको विकल प्रत्यक्ष भी कहते हैं।

अवधिज्ञान के दो भेद हैं १ भवप्रत्यय, २ गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्तक।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान, देव तथा नारकियों को होता है, यद्यपि इसमें भी क्षयोपशम निमित्त तो है हो, परन्तु उक्त भवों में उत्पन्न होने वाले समस्त प्राणियों को यथा योग्य न्यूनाधिक रूप में अवश्य ही होता है, इसलिये भव की प्रधानता से इसे भव प्रत्यय कहते हैं।

गुण प्रत्यय अर्थात् क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान किसी २ मनुष्य तथा पशु को अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होता है, यह सभी मनुष्यों तथा पशुओं को नहीं होता, अतएव इसे क्षयोपशम निमित्तक कहा है। इसके मुख्य तीन भेद हैं, देशावधि परमावधि और सर्वावधि। इनमें देशावधि और परमावधि तीन २ प्रकार के होते हैं, जघन्य, उत्कृष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अजघन्यउत्कृष्ट, परन्तु सर्वावधि एक ही प्रकार का होता है ।

देशावधि का जघन्य क्षेत्र उत्सेध अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट समस्त लोकाकाश प्रमाण होता है, अजघन्योत्कृष्ट (मध्यम) के असंख्यात भेद होते हैं। इसी प्रकार परमावधि का जघन्य क्षेत्र एक प्रदेश अधिक लोकाकाश और उत्कृष्ट असंख्यात लोक प्रमाण होता है। अजघन्य उत्कृष्ट (मध्यम) के बहुत भेद होते हैं। सर्वावधि का क्षेत्र परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र से बाहर असंख्यात् क्षेत्र होता है।

उक्त तीनों प्रकार के अवधिज्ञानों के निम्न प्रकार और भी भेद होते हैं, जो कि उपर्युक्त भेदों में गर्भित हो जाते हैं। यथा—

देशावधि के वर्धमान, हीयमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी, अननुगामी, प्रतिपाति अप्रतिपाति, ये आठ भेद हैं। परमावधि के हीयमान और प्रतिपाति विना ६ अर्थात् अवस्थित, अनवस्थित, वर्धमान, अनुगामी, अननुगामी, अप्रतिपाति, और सर्वावधि के अवस्थित, अनुगामी, अननु-गामी, अप्रतिपाति ये चार भेद होते हैं।

(१) वर्धमान-सम्यग्दर्शनादि गुणों के द्वारा आत्मा के विशुद्ध परिणाम होने से उत्पन्न हुए प्रमाण से असंख्यात लोक प्रमाण अरण्य में बांसों की परस्पर रगड़ से उत्पन्न अग्नि जैसे सूखे तृण पत्र काष्टादि ईंधन के प्राप्त होने पर बढ़ती है, उसी प्रकार बढ़ता रहे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) हीयमान–सम्यग्दर्शनादि गुणों के अभाव हो जाने से उत्पन्न हुए संक्लेश परिणामों के द्वारा, जैसे अग्नि ईंधन के अभाव में घटती जाती है, उसी प्रकार उत्पन्न हुए परिमाण से अंगुल के असंख्यातवें भाग तक घटते जाना।

(३) अवस्थित–जो सम्यग्दर्शनादि गुणों के अवस्थित होने से जिस परिमाण में उत्पन्न हुआ है, उसी परिमाण में रहे, घटे बढ़े नहीं।

(४) अनवस्थित–जा सम्यग्दर्शनादि गुणों की हानि वृद्धि होने से हीनाधिक होती रहे।

(५) अनुगामी–जो सूर्य के प्रकाश के समान साथ रहे।

(६) अननुगामो–जो साथ न जावे वहीं छूट जावे।

(७) प्रतिपाति–बिजली के प्रकाशवत् जो उत्पन्न होकर छूट जावे।

(८) अप्रतिपाति–जो छूटे नहीं।

इस प्रकार संक्षेप से अवधिज्ञान का स्वरूप कहा। अब मनः पर्यय ज्ञान को कहते हैं।

मनः पर्यय ज्ञान–जो पर के मन में तिष्ठती हुई बात को स्पष्टरीत्या जाने, इसका विषय भी अवधि ज्ञान के समान रूपी पदार्थ को जानना है, परन्तु इसका विषय उससे अनंतवेभाग सूक्ष्म है और यह सकल संयमी पुरुषों को ही होता है, जब कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधि ज्ञान व्रती अव्रती मनुष्य-स्त्री तथा तिर्यंचों (सैनी पशुओं) को भी होता है।

मनः पर्यय ज्ञान के दो भेद हैं-ऋजुमती तथा विपुलमती।

ऋजुमती—जो पर के मन में तिष्ठती हुई सरल बात को जाने, यह ज्ञान छूट भी जाता है। इसके सरल मन, सरल वचन तथा सरल काय से उत्पन्न विषय को जानने की अपेक्षा तीन भेद होते हैं।

विपुलमती—जो पर के मन में तिष्ठती हुई सरल तथा वक्र वस्तु को भी जाने। यह छूटता नहीं, किन्तु केवल ज्ञान होने तक रहता है। इसके भी सरल तथा वक्र मन, वचन, काय के विषय भेद से ६ भेद होते हैं।

केवलं सकलप्रत्यक्षम्।

अर्थ—केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष होता है, अर्थात् वह रूपी अरूपी समस्त द्रव्यों की त्रिकाल वर्ती समस्त पर्यायों को युगपत (एक ही साथ) जानता है। इसी लिये यह सकल प्रत्यक्ष समस्त घातिया कर्मों के क्षय होने से उत्पन्न होता है और सदैव एक सरीखा प्रकाशित रहता है। यह क्षायिक ज्ञान है, शुद्ध हैं, शेष क्षायोशमिक ज्ञान हैं विशेष राजवार्तिकादि ग्रन्थों से जानना चाहिये।

स्पष्ट भेद जानने के लिखे देखो परिशिष्ट सं० १

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट संख्या 1.

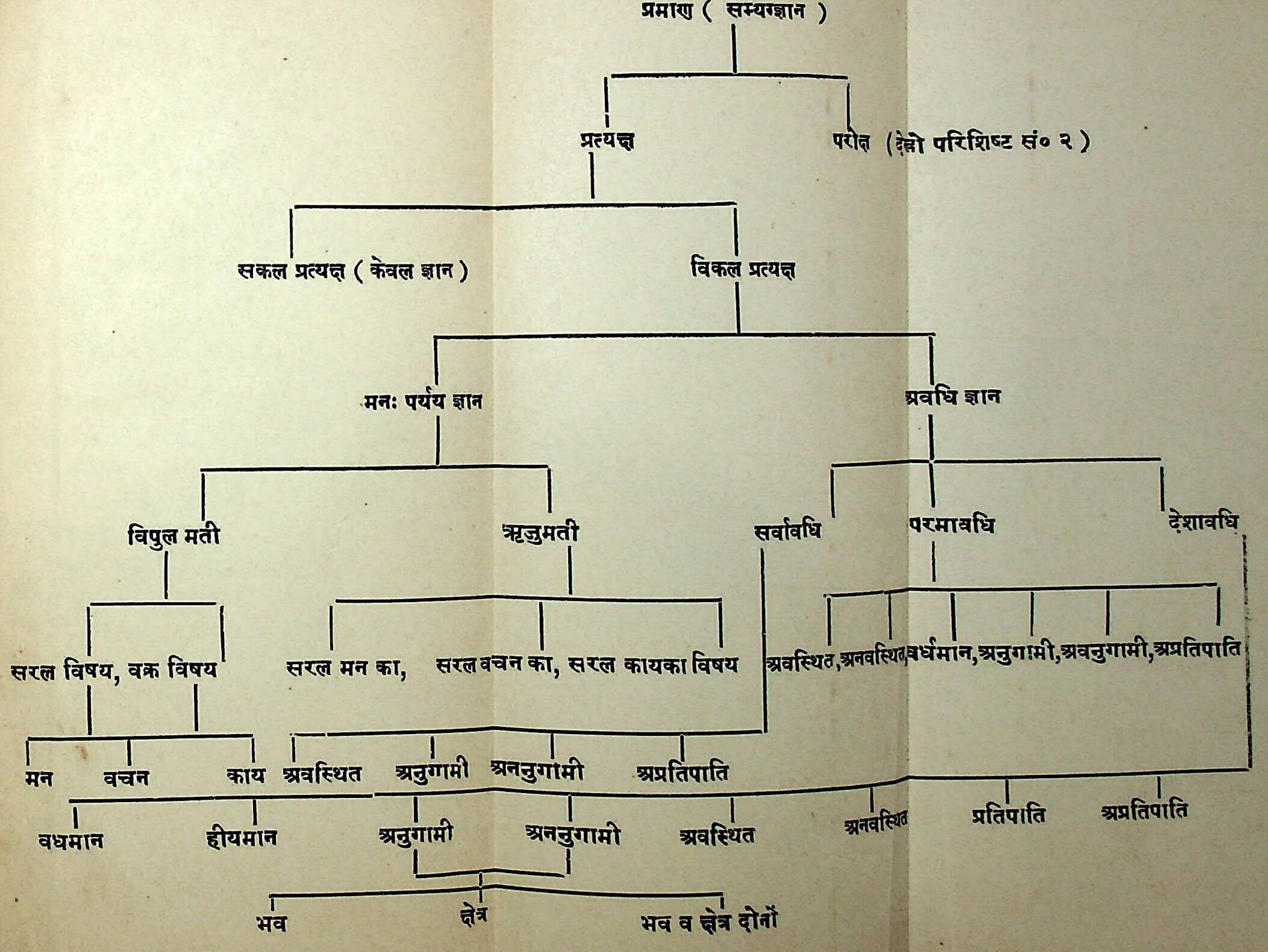

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGan

anesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varana

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार परमार्थिकप्रत्यक्षप्रमाण का वर्णन किया गया:—

मतिश्रुते परोक्षे।

अर्थ—मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान को परोक्ष प्रमाण कहते हैं, क्यों कि ये इन्द्रिय और मन के द्वारा होते हैं। जैसा कि कहा है:—

"तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्" (त० सू०)

"मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरं" (त० सू०)

अर्थात्--मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध और इति शब्द से इनको आदि लेकर प्रतिभा, बुद्धि, उपलब्धि इत्यादि सब अर्थभेद रहित मतिज्ञान के ही नामान्तर समझना चाहिये, क्यों कि ये सब मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होते हैं। यथा:—

मति--इन्द्रियों और मन से वर्तमान् कालवर्ती पदार्थ को अवग्रहादि रूप जानना।

स्मृति—अनुभवित पदार्थों का कालान्तर में स्मरण (याद) होना।

संज्ञा—वर्तमान् में किसी पदार्थ को देखकर "यह वही है, यह वैसा ही है, जो था जैसा पहिले देखा था" ऐसा जोड़ रूप ज्ञान होना। इसको प्रत्यभिज्ञान भी कहते हैं। जैसे यह वही देवदत्त है।

चिन्ता--किसी चिन्ह को देखकर यह निश्चय करना कि वहां इस चिन्ह वाला अवश्य ही होगा। इसे ऊहा या तर्क भी कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिनिबोध—सन्मुख चिन्हादि देखकर उस चिन्ह वाले का निश्चय कर लेना। इसे स्वार्थानुमान भी कहते हैं।

यह मतिज्ञान "अवग्रहेहाऽवायधारणाः" अवग्रह, ईहा आवाय और धारणा इन चार में भेद रूप होता है। सर्व प्रथम जो इन्द्रिय पदार्थ का सम्बन्ध होते ही सत्तामात्र (निर्विकल्प रूप से) देखे या जाने उसे दर्शन कहते हैं।

अवग्रह--दर्शन के पश्चात् श्वेत या कृष्णादि के विकल्प रूप विशेष जानना।

ईहा—अवग्रह के द्वारा जाने हुए पदार्थ को विशेष जानने की इच्छा होना कि यह श्वेत व कृष्णादि क्या पदार्थ हैं? यह ध्वजा होना चाहिये, या वगुले की पंक्ति होना चाहिये।

अवाय--ईहा के पश्चात् ही, जो ईहा में ज्ञान हुआ था, उसका विशेष चिन्हों द्वारा निश्चित् ज्ञान होजाना, कि वगुले की पंक्ति ही है, या ध्वजा ही है।

धारणा--अवग्रहादि से जाने हुए पदार्थों को कालान्तर में नहीं भूलना अर्थात् स्मरण रहना। इस प्रकार मतिज्ञान के ये चार भेद उत्तरोत्तर विशेषताओं को लिये हुए होते हैं। इन चारों के विषय को अपेक्षा वारह २ उत्तर भेद होते हैं यथाः--

"बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्"। (त० सू०)

अर्थात्—बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव ये छः और इनसे उल्टे अल्प, एक विध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त, और अध्रुव ये छः मिलकर बारह भेद होते। यथाः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट सं० १

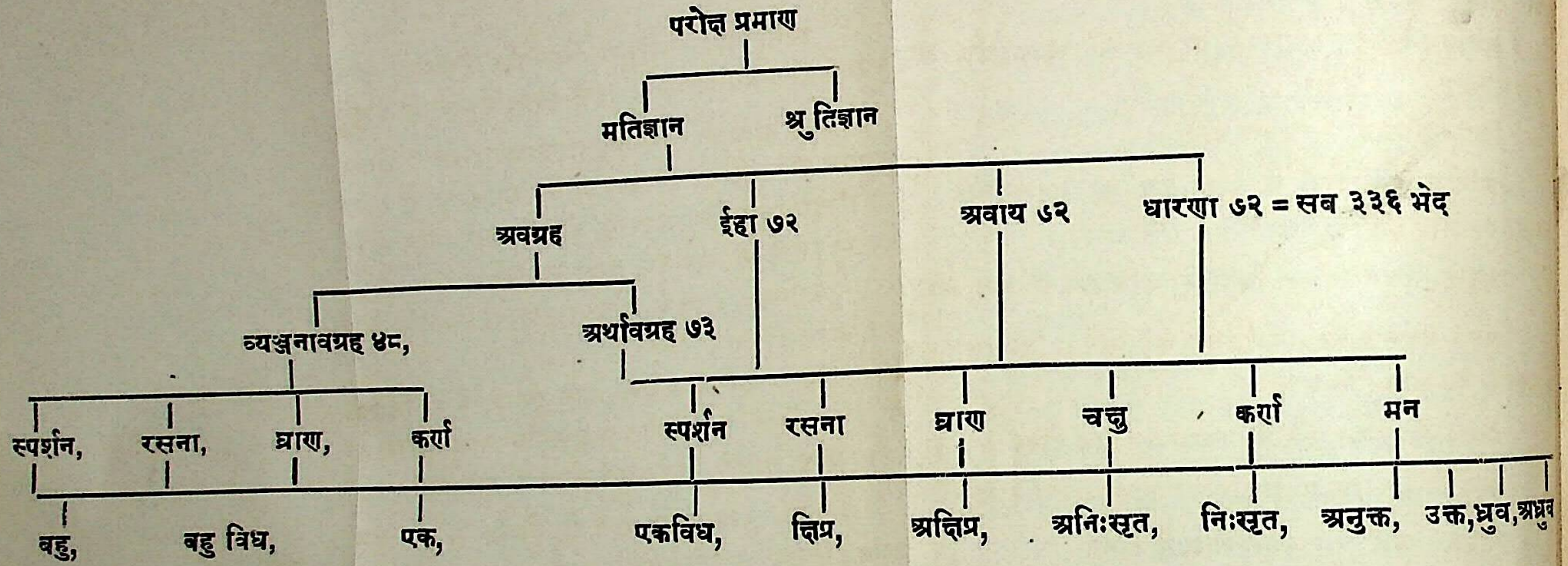

अथवा

मतिज्ञान

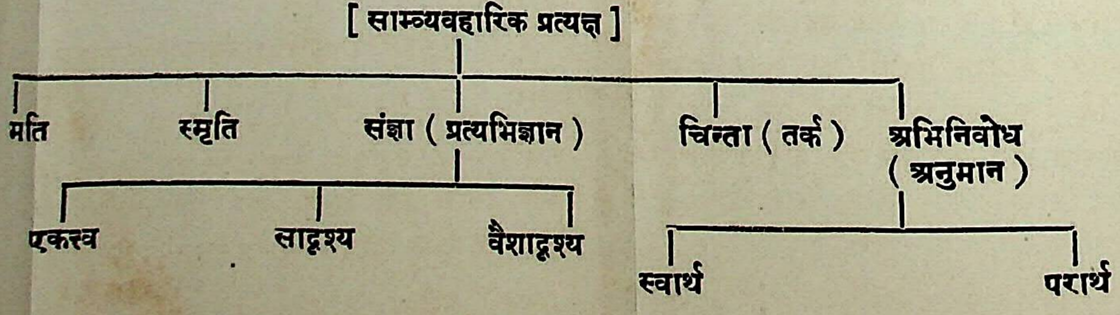

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहु---एक जाति के बहुत पदार्थों का अवग्रहादि रूप ग्रहण होना।

बहुविध--बहुत प्रकार के पदार्थों का अवग्रहादि रूप ग्रहण होना।

क्षिप्र--शीघ्रता से ग्रहण होना।

अनिःसृत--पदार्थ के एक देश का ग्रहण होने से सम्पूर्ण का ज्ञान होना।

अनुक्त-वचन से सुने बिना ही अभिप्राय से जान लेना।

ध्रुव--बहुत काल तक जितने का तितना निश्चल रूप से पदार्थों का ज्ञान होते रहना।

अल्प--थोड़े या एक ही पदार्थ का ज्ञान होना।

अल्प विध--एक ही प्रकार का पदार्थ ग्रहण होना।

अक्षिप्र--धीरे धीरे बहुत काल में जानना।

निःसृत--प्रगट पदार्थों को जानना।

उक्त-घट पट आदि पदर्थों को शब्द से सुन कर जानना।

अध्रुव--जो क्षण क्षण में घटता बढ़ता रहे, या क्षण भर में नष्ट होजाय यह ज्ञान पदार्थों का ही होता है, और ५ इन्द्रियों तथा मन से होता है,अतएव अवग्रहादि ४ × बहु आदि १२ × इन्द्रिय ५ और अनिन्द्रय १ एवं ६ = २८८ भेद हुए + इनमें व्यंजनावग्रह (जो अप्रकट शब्दादि पदार्थों का केवल स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र से १२ बहु आदि भेद युक्त होता है) के ४८ भेद मिलाने से सब ३३६ भेद मति ज्ञान के होते हैं। देखो परिशिष्ट सं० २

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब श्रुतज्ञान को कहते हैं।

" श्रुतं मतिपूर्वम् "।

अर्थात्--जो मति ज्ञान पूर्वक होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। श्रुतज्ञान मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थों को ही विशेषता से जानना है।

श्रुतज्ञान भावश्रुत और द्रव्यश्रुत ऐसे दो भेद रूप होता है। भावश्रुत, स्वार्थ ही होता है, जो ज्ञानात्मक है। परन्तु द्रव्य श्रुत वचन रूप परार्थ व स्वार्थ दोनों प्रकार का होता है। स्वार्थ (द्रव्यश्रुत भाव वचन रूप होता है, जो कहा नहीं जाता है, परन्तु परार्थ द्रव्यश्रुत—द्रव्य वचनात्मक या शब्दात्मक होता है)।

शब्द दो प्रकारके होते हैं--भाषात्मक और अभाषात्मक। अभाषात्मक शब्द-जिनका कोई व्यक्त अर्थ न होवे, और पुद्गलों के परस्पर के सङ्घर्षण से होवें। ये वैस्रासिक और प्रायोगिक दो प्रकार के होते हैं। वैस्रासिक जो बिना प्रयोग के स्वयं सङ्घर्षणादि से होवें, जैसे मेघों की गर्जना आदि। और प्रायोगिक जो मनुष्यों के प्रयोग से होवें। ये चार प्रकार के होते हैं--तत् (ढोल, नगाड़ादि के शब्द) बितत (वीनी, सितार, तमूरा, सारंगी, चिकाड़ा आदि के शब्द) घन (घंटा झालर, मजीरा, झांझ आदि के शब्द) और सुषिर (बांसुरी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलगोजा आदि के शब्द)। ये आभाषात्मक शब्द जड़ पदार्थों से उत्पन्न होते हैं, अतएव इनमें सम्यक् या मिथ्याज्ञान की कल्पना नहीं होती है। प्रसङ्ग वश ही यहां लिख दिये गये हैं।

भाषात्मक शब्द-भी दो प्रकार के होते हैं, अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक। अनक्षरात्मक-दोइन्द्री आदि तिर्यंचों के शब्द और सर्वज्ञ भगवान् की दिव्यध्वनि को कहते हैं। द्वीइन्द्री आदि तिर्यंचों के शब्द मिथ्याज्ञान रूप ही होते हैं। यहां प्रसङ्ग वश ही लिखे गये हैं। और सर्वज्ञ भगवान को दिव्यध्वनि प्रमाण स्वरूप ही है। अक्षरात्मक शब्द जो मनुष्यों के द्वारा व्यवहार के अर्थ बोले जाते हैं। ये आर्य और मलेच्छादि अनेक भाषा रूप होते हैं, जैसे संस्कृत, प्राकृत, मागधी. पालो, नागरी आदि।

तात्पर्य--अक्षरात्मक भाषा वह है जिससे मनुष्य बोल कर अपने मन की बात दूसरों पर प्रगट कर सकता और दूसरों के द्वारा कहे हुए शब्दों से उनके मन की बात जान सकता है। ये भाषाएँ देश देशों के अनुसार बहुत से लोगों के माने हुए अर्थों के व्यंजक शब्दों के संग्रह हैं। अर्थात् जिन शब्दों का जो अर्थ बहु संख्यक लोग मान लेते हैं, वेही अर्थ उन शब्दों का ग्राह्य अर्थ होता है। इसी शब्द संग्रह का नाम भाषा है। भाषाओं में अनेकों शब्द ऐसे हैं, जो प्रकरण के वश से कई शब्द एक ही अर्थ को प्रगट करते हैं। जैसे इन्द्र शक्र पुरंदर आदि शब्दों का एक इन्द्र ही अर्थ होता है। और कई ऐसे हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो भिन्न स्थानों में प्रयोग करने से भिन्न २ अर्थ को बताते हैं, जैसे सेन्धव आदि। सेन्धव शब्द का अर्थ भोजन के सम्बन्ध में नमक और सवारी के सम्बन्ध में घोड़ा अर्थ होता है। इसलिये इनका प्रयोग व अर्थ प्रकरण व प्रयोजन के अनुसार ही किया जाता है। यहां तक सामान्य शब्दों का कथन किया गया। अब विशेष कथन करते हैं, क्यों कि यहां वस्तु स्वरूप के कथन की अपेक्षा से परोक्ष प्रमाण के द्वितीय भेद श्रुत ज्ञान का वर्णन करना है। और यहां पर अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान से ही प्रयोजन है। उसी का कथन करते हैं वह श्रुत ज्ञान दो प्रकार का होता है। नय स्वरूप और प्रमाण स्वरूप। नय--पदार्थ के एक अंश या धर्म या पर्याय को बताने वाला होता है। इसलिये वह अंशरूप है। इनका कथन आगे करेंगे। प्रमाण—पदार्थ के सम्पूर्ण स्वरूप को, उसके अनन्त धर्म व पर्यायों सहित जानता है व ग्रहण करता है। यह दो प्रकार का होता है आगम और अध्यात्म। ये सर्वज्ञ द्वारा प्रगट होने से प्रमाण होते हैं। अध्यात्म—उसे कहते हैं, जो मुख्यता से शुद्ध द्रव्यों का कथन करे। आगम—निश्चय व्यवहारादि नयों की अपेक्षा से तर्क वितर्क पूर्वक पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का निश्चय कथन करे। इन भेद प्रभेदों का ज्ञान आगे के परिशिष्ट सं० ३ से होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट संख्या ३.

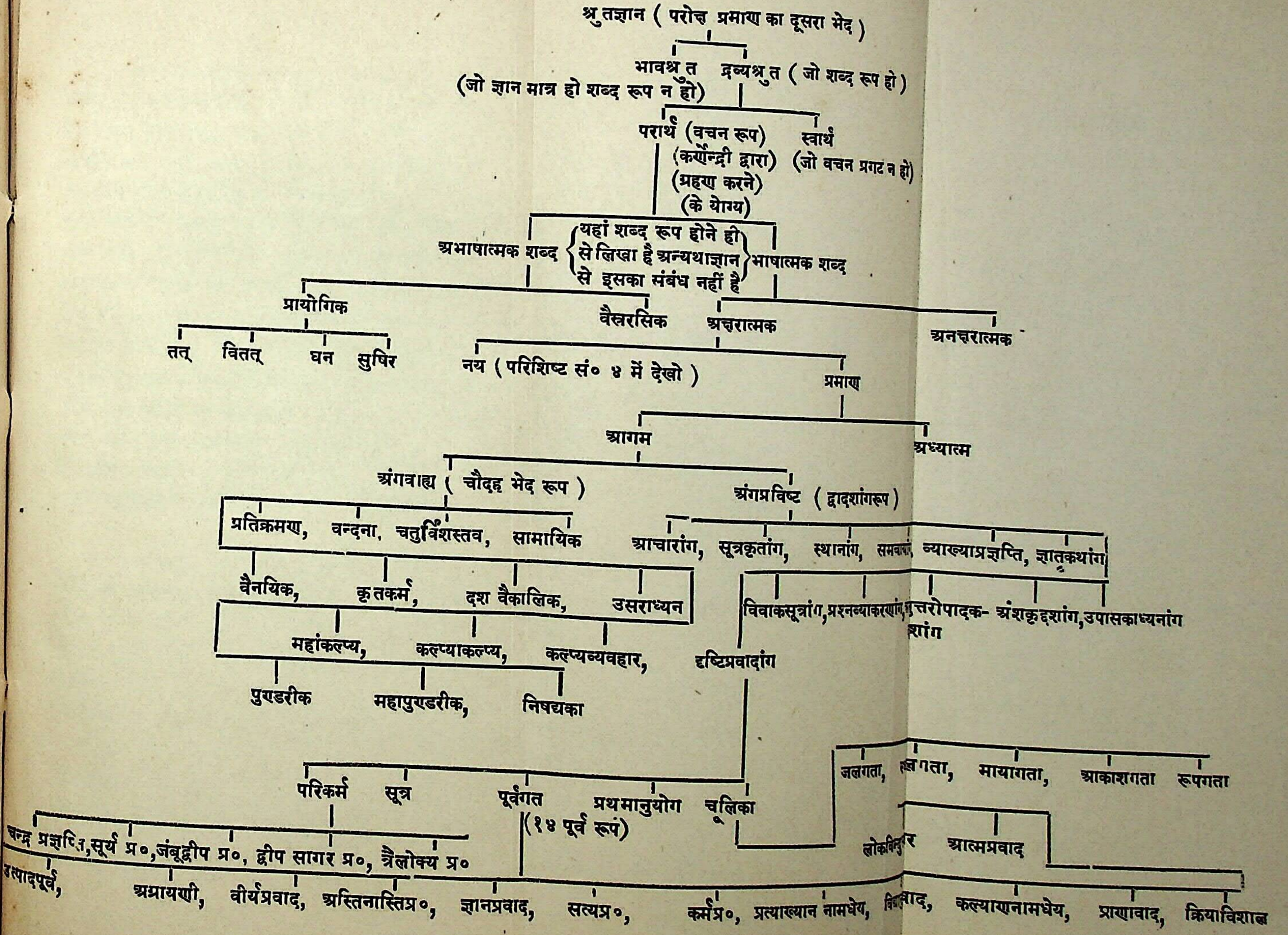

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ–पदार्थों का स्वरूप प्रमाण और नयों से जाना जाता है। सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष दो भेद रूप होता है। केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष, मनः पर्याय और अवधि ज्ञान, देश प्रत्यक्ष होते हैं। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, पराधीन होने से परोक्ष हैं। इनका भेद प्रभेदों सहित वर्णन ऊपर बता आये हैं। विशेष इतना ही है कि केवल मनःपर्यय, अवधि, और मति ज्ञान स्वार्थ और प्रमाण स्वरूप ही होते हैं, परन्तु श्रुत ज्ञान, स्वार्थ और परार्थ तथा प्रमाण और नय ऐसा दो दो भेद रूप भी होता है। वचनात्मक श्रुत ज्ञान परार्थ और नय स्वरूप होता है। नयों के विषयों को समुदाय रूप जो ग्रहण करता है, यह प्रमाण कहाता है। उक्त पांच ज्ञानों में केवल, और मनः पर्यय तो प्रमाण ही होते हैं। परन्तु अवधि, श्रुत और मति, यह सम्यग्दर्शन सहित होते हैं, तब प्रमाण होते हैं। और जब मिथ्या दर्शन सहित होते हैं तब अप्रमाण होते हैं। और इसलिये वे कुअवधि, कुश्रुत और कुमति ज्ञान कहाते हैं॥

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष—यह मति ज्ञान का ही भेद है और इन्द्रियों व मन के आधीन होने से यद्यपि परोक्ष है, तो भी लोक व्यवहार में यह प्रत्यक्ष कहाता है। जैसे किसी ने शिखर जी की बीस टोकों के दर्शन किये हैं, तब वह कहता है कि शिखर जी पर २० टोकें हैं। क्यों कि मैंने प्रत्यक्ष अपनी आंखों से देखी हैं। जब कि दूसरा आदमी जिसने, दर्शन तो नहीं किये परन्तु सुन करके कहता है कि शिखरजी की २० टोकें हैं, क्यों कि अमुक भाई कहते थे, मैंने प्रत्यक्ष अपने कानों से सुना है इत्यादि। अन्यत्र परोक्ष प्रमाण के स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान और आगम ऐसे ५ भेद भी बताये हैं। (जै० सि० प्र० देखो) परन्तु इन में से प्रथम के चार मति ज्ञान में और ५ वां भेद आगमश्रुत ज्ञान में गर्भित हैं।

इति प्रमाणमुक्तं। अत्र तदवयवा नयाः कथ्यन्ते।

अर्थ—इस प्रकार प्रमाण का स्वरूप कहा। अब यहां उसके अवयव स्वरूप नयों का कथन करते हैं।

भावार्थ—ऊपर कह चुके हैं कि पदार्थ अनन्त धर्मात्मक होते हैं। वे सब धर्म प्रमाणाधीन हैं। उनका कथन वचन द्वारा एक सा नहीं कहा जाता है। अर्थात् वचन की प्रवृत्ति क्रम से होती है। इस से वे सब धर्म भी क्रम से कहे जांयगे। और उन सब के लिये पृथक २ शब्दों का प्रयोग भी किया जायगा। जब एक शब्द एक धर्म बतावेगा तब दूसरा शब्द दूसरा धर्म बतावेगा। इस प्रकार अनन्त शब्द अनन्त धर्मों को बतावेंगे, और वे अपना अपना धर्म बताते हुए जब कि अपने सहधर्मी अन्य शब्दों का व उनके वाच्य धर्मों का विरोध नहीं करते, तब उन्हें नय कहते हैं। और ये नयें एक देश प्रमाण होती हैं। किन्तु जब ये केवल अपनी स्थापना करके, अन्य धर्मों का लोप कर प्रमाण का स्वरूप धारण करने की चेष्टा करती हैं, तब ये कुनय कहाती हैं और अप्रमाण होती हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक धर्म को ग्रहण करने से नय को अवयव अर्थात् अङ्ग या अंश कहते हैं। और समस्त धर्मों को समुदाय रूप (द्रव्य को) ग्रहण करने से प्रमाण को, अवयवी अर्थात् अंगी या अंशी कहते हैं। जैन धर्म की नय सापेक्ष होती हैं, इसी से यह अनेकान्त या स्याद्वाद कहाता है और प्रमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। जब कि अन्य धर्म एकान्त वादी होने से अप्रमाण ठहरते हैं। जैसा कि कहा है—

"जैन धर्म पर धर्म में, भी, ही अन्तर जान।
अनेकान्त सुज्ञान भी, ही एकान्त अज्ञान॥

इति नय स्वरूप।

नयभेदा उच्यन्ते

अर्थ—नयों के भेद कहते हैं।

णिच्छयववहारणया मूलमभेयाण याण सव्वाणं।
णिच्छयसाहणहेऊ दव्वयपज्जत्थिया मुणह॥ ४॥

अर्थ - ऊपर बता चुके हैं कि द्रव्यों के अनन्त धर्मों को बताने वाले जितने शब्द हैं, वे सब नय ही हैं, परन्तु सामान्य रूप से वे सब ❋ निश्चय और ❋ व्यवहार जो द्रव्य के यथार्थ स्वरूप को कथन करे सो निश्चय नय कहता है और जो प्रयोजन के वस से पदार्थों की सिद्धि के लिये व्यवहार दृष्टि से यथासम्भव कार्य में कारण का, कारण में कार्य का, अन्य द्रव्य में अन्य द्रव्य का अन्य गुणों में अन्य गुणों का उपचार कर कथन करे सो व्यवहार नय कहाता है। इन दो मूल भेदों में ही गर्भित हो जाते हैं, तथा निश्चय नय के साधन (हेतु भूत) द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो भेद श्री मुनिराज ने बताये हैं। सो ही कहते हैं। यथा--

---

❋ निश्चयनय द्रव्यस्थित और व्यवहारनय पर्याय स्थित होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः, ऋजुसूत्रः, शब्दः समभिरूढः, एवंभूत इति नवनयाः स्मृताः ।

अर्थ—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ़ और एवंभूत, इस प्रकार नव भेद नयों के माने गये हैं।

भावार्थ—वास्तव में देखा जाय तो ये नैगमादि सातों नय, उक्त दोनों द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों में ही गर्भित हो जाते हैं, परन्तु मध्यम रुचि वाले शिष्यों की अपेक्षा सूत्र में इनको प्रथक भी बताये हैं। इसका विस्तार इस प्रकार है कि निश्चय नय के दो भेद हैं, अध्यात्म निश्चय और शास्त्रीय निश्चय और इन दोनों के भी द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों के भेद से दो दो भेद होते हैं। जो द्रव्य की ओर दृष्टि रख कर कथन करे सो "द्रव्यार्थिक" और जो पर्याय की ओर दृष्टि रख कर कथन करे, सो "पर्यायार्थिक" नय कहाती हैं। शास्त्रीय द्रव्यार्थिक के नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन तथा शास्त्रीय पर्यायार्थिक के ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ़ और एवंभूत ये चार ऐसे सब सातों भेद शास्त्रीय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक में ही गर्भित हो जाते हैं। ऐसे ही अध्यात्म निश्चय के द्रव्यार्थिक के दश भेद और पर्यायार्थिक के छः भेद होते हैं। इन सब का वर्णन आगे करेंगे। यहां—

उपनयाश्च कथ्यन्ते, नयानां समीपा उपनयाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ-उपनयों का कथन करते हैं। जो नयों के समीप रहें अर्थात् प्रयोजन के वश से, नय के किसी अंश को ग्रहण कर के, वस्तु को अनेक विकल्प रूप से कहे, अथवा अन्य धर्म का अन्य द्रव्य में सम्भव आरोप कर के कहे, सो सब उपनय अर्थात् व्यवहार नय कहाते हैं। ये उपनय भी व्यवहार से पदार्थों के साधक और नयों के अविरुद्ध होने से सुनय ही होते हैं, क्यों कि विरोधी नय, नय नहीं, किन्तु नयाभास कहाती हैं। उपनयों के मुख्य तीन भेद हैं।

सद्भूत व्यवहारः, असद्भूत व्यवहारः, उपचरितासद्भूतव्यवहारश्चेत्युपनयास्त्रेधा।

अर्थ-सद्भूत व्यवहारअसद्भूत व्यवहार और उपचरित असद्भूतव्यवहार ऐसे उपनय के तीन भेद होते हैं।

इदानीमेतेषां भेदा उच्यन्ते।

अर्थ--अब उन नयों के भेदों का विशेष व्याख्यान करते हैं।

द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः।

अर्थ--अध्यात्म द्रव्यार्थिक के दश भेद होते हैं। यथा-

कर्मोपाधिनिरपेक्षः, शुद्धद्रव्यार्थिको यथा संसारी जीवः सिद्धसदृक शुद्धात्मा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ--जो कर्म कृत उपाधि (कर्म के बन्ध उदय या सत्ता) की अपेक्षा नहीं करके, केवल द्रव्य के स्वरूप को ग्रहण करता है,उसे **कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक** नय कहते हैं। जैसे संसारी जीव को सिद्ध के समान शुद्ध आत्मा कहना ॥ १ ॥

उत्पादव्ययगौणत्वेन, सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा द्रव्यं नित्यम्।

अर्थ--उत्पाद, व्यय को गौण करके, केवल द्रव्य की सत्ता मात्र को ग्रहण करे, सो **सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक** नय कहाता है। जैसे-द्रव्य नित्य है ॥२ ॥

भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निजगुणपर्यायस्वभावाद्द्रव्यमभिन्नम् ।

अर्थ--जो भेद विकल्प किये बिना ही द्रव्य का कथन करे, सो **भेदकल्पनानिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिक** नय होता है। जैसे-द्रव्य अपने गुण पर्याय और स्वभावों से अभिन्न होता है॥ ३ ॥

कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको, यथा क्रोधादि-कर्मजभावआत्मा ।

अर्थ--कर्मकृत उपाधि की अपेक्षा रख कर द्रव्य का कथन करने वाला, **कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक** नय कहाता है। जैसे--कर्मजनित क्रोधादि भावों की अपेक्षा जीव को क्रोधी मानी इत्यादि कहना ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको, यथैकास्मिन् समये द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् ।

अर्थ—उत्पाद और व्यय की अपेक्षा करके जो द्रव्य का कथन करे सो उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहाता है। जैसे द्रव्य एक ही समय में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य आत्मक है ॥ ५ ॥

भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको, यथात्मनो दर्शनज्ञानादयो गुणाः ।

अर्थ—जो भेद कल्पना की अपेक्षा रखकर द्रव्य का कथन करे, सो भेदकल्पनासापेक्षअशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहाता है। जैसे आत्मा के दर्शन, ज्ञान सुख वीर्यादि गुण होते हैं ॥ ६ ॥

अन्वयद्रव्यार्थिको, यथा गुणपर्यायस्वभावंद्रव्यम् ।

अर्थ--जो समस्त गुणों और पर्यायों में द्रव्य को अन्वय रूप से ग्रहण करे, सो अन्वयद्रव्यार्थिक नय कहाता है। जैसे द्रव्य गुण पर्याय स्वभाव वाले होते हैं ॥ ७ ॥

स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको, यथास्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षयाद्रव्यमस्ति ।

अर्थ—जो अपने द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा से द्रव्य के अस्तित्व को ग्रहण करे, सो स्वद्रव्यादिग्राहक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यार्थिक नय कहाता है। जैसे जीव द्रव्य अपने अनंत ज्ञानादि गुणों के समुदाय रूप से स्व द्रव्य, अपने असंख्यात प्रदेशों रूप स्वक्षेत्र, अपने (संसारापेक्षया) अनादि अनंत (अभव्य का) अनादि सान्त (भव्य का) और सादि अनन्त (सिद्धात्मा का) अथवा सामान्यपने सर्व जीवों का अनादि अनन्तकाल, स्वकाल और (संसारावस्था में) औपशमिक मिश्र तथा औदयिकादिभाव तथा (सिद्धावस्था में) क्षायिकादि भाव, स्वभाव की अपेक्षा जीव द्रव्य है, इत्यादि इसी प्रकार सब द्रव्यों पर लगाना लेना चाहिये ॥ ८ ॥

परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको, यथा परद्रव्यादि चतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति ।

अर्थ—जो पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य का नास्तित्व स्वीकार करे, सो पर द्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिक नय कहाता है। जैसे जीव द्रव्य, पुग्दल के वर्णादि गुणों के समुदाय रूप द्रव्य, उसके संख्यात् असंख्यात् अथवा अनन्त परमाणु स्वरूपक्षेत्र, अनादि अनन्त काल परिणमन स्वरूप स्वकाल और अचेतनत्व आदि भावों की अपेक्षा नहीं है ॥ ९ ॥

परमभावग्राहकद्रव्यार्थिको, यथा ज्ञानस्वरूपात्मा। अत्रानेकस्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यःपरम स्वभावो गृहीतः ।

अर्थ—जो द्रव्य के अनेक स्वभावों में से किसी एक मुख्य स्वभाव को ग्रहण करके द्रव्य का कथन करे उसे परमभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्राहकद्रव्यार्थिक नय कहते हैं। जैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है, यहां यद्यपि आत्मा में ज्ञानादि अनन्त गुण होते हैं, तो भी ज्ञान गुण की मुख्यता से उसे ज्ञान स्वरूप कहा गया है।

इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः।

अर्थ—इस प्रकार अध्यात्म द्रव्यार्थिक के दश भेदों का स्वरूप कहा।

अथ पर्यायार्थिकस्य षट् भेदा उच्यन्ते—

अर्थ—अब अध्यात्म पर्यायार्थिक के षट भेदों का स्वरूप कहते हैं। यथा—

अनादिनित्यपर्यायार्थिको यथा पुद्गलपर्यायो नित्यो मेर्वादिः।

अर्थ—जो स्थूल आकारादि की अपेक्षा द्रव्य की अनादि नित्य पर्यायों को ग्रहण करे, सो अनादिनित्यपर्यायार्थिक नय है। जैसे सुमेरु पर्वत अथवा चन्द्रमा सूर्यादि पुद्गल की स्थूल पर्यायें अनादि नित्य होती हैं। यद्यपि समय समय इनमें से संख्यात् असंख्यात् व अनन्त परमाणु आते जाते रहते हैं, इस लिये सूक्ष्म पर्याय रूप परिणमन होते हुए भी, इन अकृत्रिम पदार्थों की स्थूल पर्याय अर्थात् आकारादि जैसे का वैसा ही बना रहता है, इसी से ये अनादि नित्य पर्यायें कहाती हैं।

सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायो नित्यः।

अर्थ—जो सादि और नित्य पर्याय को ग्रहण कर द्रव्य का कथन करे, वह सादिनित्यपर्यायार्थिक नय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे सिद्ध पर्याय सादि नित्य है। अर्थात् अनादि कर्मसम्बन्ध से संसार में परिभ्रमण करते हुए जीव को कभी काल लब्धि के वश से सम्यक्त्वादि होकर कर्म से छुटकारा होगया, क्यों कि बन्ध पूर्वक ही मोक्ष होता है, इस लिये सिद्ध अवस्था की आदि तो है, परन्तु अक्षय अनन्त होने से कभी अन्त न होगा, इस लिये सिद्ध पर्याय सादि नित्य होती है।

सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावो ऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको, यथा समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः।

अर्थ–जो सत्ता को गौण करके केवल उत्पाद व्यय रूप द्रव्य की पर्याय को ग्रहण करे, सो अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक नय कहाती है। जैसे द्रव्यों की पर्यायें समय समय प्रति नष्ट होती रहती हैं।

सत्तासापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको, यथा एकस्मिन् समये, त्रयात्मकः पर्यायः।

अर्थ–सत्ता (ध्रौव्यत्त्व) की अपेक्षा रख कर द्रव्य को त्रिलक्षणात्मक, अर्थात् उत्पाद व्यय और ध्रौव्य स्वरूप ग्रहण करना, वह सत्ताग्राहक नित्यअशुद्धपर्यायार्थिक नय है। जैसे द्रव्य को एक ही समय में, पूर्व पर्याय के विनाश, उत्तर पर्याय के उत्पाद और द्रव्यपने से ध्रौव्य स्वरूप ऐसा त्रिलक्षणात्मक कहना।

कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावोऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणा पर्यायाः ।

अर्थ—कर्म कृति उपाधि से रहित नित्य शुद्ध पर्याय को ग्रहण करने वाला कर्मोपाधि निरपेक्ष नित्यशुद्धपर्यायार्थिक नय कहाता है। जैसे शुद्ध सिद्ध पर्याय के समान संसारी पर्यायों को कहना।

कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको, यथा संसारिणामुत्पत्तिमरणेस्तः ।

अर्थ—कर्म कृति उपाधियों की अपेक्षा रख कर संसारी जीवों की चतुर्गति सम्बन्धी अनित्य अशुद्ध पर्यायों को ग्रहण करके कथन करने वाला, कर्मोपाधि सापेक्ष अनित्यअशुद्ध पर्यायार्थिक नय है। जैसे संसारी जीव जन्म और मरण करते हैं।

इति पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः ।

अर्थ—इस प्रकार अध्यात्म पर्यायार्थिक के छः भेदों का स्वरूप कहा।

अब शास्त्रीय द्रव्यार्थिक नय के तीन भेदों का स्वरूप कहते हैं

नैगम नय उसे कहते हैं, जो किसी पदार्थ की भूत भविष्यत पर्यायों को अभेद रूप से वर्तमानवत् संकल्प मात्र ग्रहण करे।

नैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्तमानकालभेदात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—नैगमनय भूत, भविष्य और वर्तमान काल के भेद से तीन प्रकार का है।

अतीते वर्तमानारोपणं यत्र स भूतनैगमो, यथा अद्यदीपोत्सवादिने श्री वर्द्धमानस्वामी मोक्षं-गतः ।

अर्थ—भूत काल की बात को वर्तमान काल में आरोपण कर कहना,सो भूत नैगम नय है। जैसे आज दीवाली के दिन श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्ष गये हैं।

भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भाविनैगमो, यथा अर्हन् सिद्ध एव।

अर्थ—भविष्यत काल में होने वाली बात को भूत कालवत हुई कहना सो भावि नैगम नय कहाती है। जैसे अर्हन्त को सिद्ध हुई कहना।

कुर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत्कथ्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा ओदनः पच्यते इति नैगमस्त्रेधा ।

किसी कार्य को करना प्रारम्भ तो कर दिया हो, लेकिन वह कार्य कुछ हुआ, कुछ नहीं हुआ तो भी पूर्ण हुए वत् ही कहना, वर्तमाननैगम नय है। जैसे-भात पकाने का कार्य प्रारंभ तो कर दिया है परन्तु अभी पका नहीं है। तो भी उसे पकता है कहना इस प्रकार नैगम नय के तीन भेद कहे हैं ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संग्रह नय उसे कहते हैं, जो एक वस्तु की समस्त जाति को तथा उसकी पर्याय को संग्रह कर एक स्वरूप कहे।

संग्रहो द्विविधः।

अर्थ--संग्रह नय दो प्रकार का है, सामान्य और विशेष

सामान्यसंग्रहो, यथा—सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधीनि।

अर्थ--सामान्य (लक्षण अर्थात् गुणों की) अपेक्षा से समस्त द्रव्यों को एक स्वरूप अविरोध रूप से ग्रहण करने वाला ज्ञान **सामान्यसंग्रह** नय है। जैसे सर्व द्रव्य सत् (उत्पाद व्यय, तथा ध्रौव्य) स्वरूप होने से, परस्पर अविरोधी हैं, अर्थात् सत् मात्र कहने से समस्त द्रव्यों का ग्रहण होजाता है। क्यों कि सत् सामान्य सब द्रव्यों में पाया जाने से सामान्य लक्षण है॥ १॥

विशेषसंग्रहो, यथा—सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः इति संग्रहोऽपि द्विधा।

एक जाति विशेष की अपेक्षा से अनेक भिन्न २ पदार्थों को अविरोध रूप से, एक स्वरूप कहना सो **विशेषसंग्रह** नय कहाता है, जैसे-चेतना सामान्य की अपेक्षा से समस्त जीवों को, जीव मात्र कहकर अविरोधपने कर ग्रहण करना इस प्रकार संग्रहनय के दो भेद कहे।

व्यवहार नय उसे कहते हैं, जो संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थों में विधि पूर्वक भेद ग्रहण करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहारोऽपि द्वेधा।

अर्थ--व्यवहार नय भी दो प्रकार का है। सामान्य और विशेष।

सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो, यथाद्रव्याणि जीवाजीवाः।

अर्थ—सामान्य संग्रह नय के विषय को भेद रूप ग्रहण करे, सो **सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहार** नय है। जैसे द्रव्य, जीव और अजीव के भेदरूप दो प्रकार हैं॥ १॥

विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो, यथा जीवा संसारिणो मुक्ताश्च। इति व्यवहारोपि द्वेधा।

अर्थ—विशेष संग्रह नय विषय को भेद रूप ग्रहण करने वाला ज्ञान, **विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार** नय कहाता है। जैसे-जीव संसारी और मुक्त ऐसे दो भेद रूप होते हैं इस प्रकार व्यवहार नय के भी दो भेद कहकर शास्त्रीय द्रव्यार्थिक नय के तीन भेदों का वर्णन किया। अब शास्त्रीय पर्यायार्थिक नय के चार भेद कहते हैं। ऋजुसूत्र नय उसे कहते हैं-जो अतीत अनागत पर्यायों को छोड़कर वर्तमान पर्याय मात्र को ग्रहण करे।

ऋजुसूत्रो द्विविधः।

अर्थ--ऋजुसूत्रनय दो प्रकार का है। सूक्ष्म और स्थूल।

इसे (ऋजु सूत्र को) नैगम संग्रह और व्यवहार सहित अर्थ नय भी कहते हैं। क्यों कि इनका विषय पदार्थ का विचार करते हैं। और शेष शब्द समभिरूढ और एवंभूत ये तीनों शब्द नय भी कहाते हैं। क्यों कि ये शब्द पर विचार करते हैं इनका विषय शब्द है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्मऋजुसूत्रो, यथा—एकसमयावस्थायीपर्यायः ।

अर्थ--एक वर्तमान समय मात्र की पर्याय को ग्रहण करने वाला सूक्ष्मऋजुसूत्र नय है, एक समयवर्ती पदार्थ की पर्याय को अर्थपर्याय कहते हैं, यह उसी को ग्रहण करता है यद्यपि यह नय संव्यवहार्य नहीं होती. तो भी विषय मात्र बताने के प्रयाजन से इसका वर्णन किया गया है । क्योंकि समस्त नयों का साधन ही लोक संव्यवहार कहाता है ॥ १ ॥

स्थूलऋजुसूत्रो, यथा—मनुष्यादिपर्यायास्तदायुः प्रमाणकालं तिष्ठन्ति । इतिऋजुसूत्रोऽपिद्वेधा ।

अर्थ--अनेक समय स्थायी स्थूल एक पर्याय को ग्रहण करने वाला ज्ञान स्थूलऋजुसूत्र नय कहाता है । जैसे-मनुष्यादि की पर्यायों को उनकी आयु प्रमाण काल तक ग्रहण करना इसमें भी भूत और भविष्यत् पर्यायों का ग्रहण नहीं होता है ।। २ ।।

शब्दसमभिरूढैवंभूतानयाः प्रत्यकमेकका नयाः ।

अर्थ--शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये तीनों एक एक ही भेद रूप होते हैं । (इन्हें शब्द नय भी कहते हैं)

शब्दनयो यथा—दारा, भार्याकलत्रं, जलं, आपः ।

अर्थ—जो लिंग, संख्या, साधन आदि के व्यभिचारों को दूर कर के पदार्थों को गृहण करे, वह शब्दनय है । जैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दारा, भार्या और कलत्र ये तीनों शब्द भिन्न २ लिंग वाची होने पर भी एक तीन रूप से एक स्त्री (मानवी) का बोध कराते हैं। यह लिंग व्यभिचार हटाया। जलम् आपः इनमें संख्या भेद होने से दो रूप से नीर (पानी) ही का बोध होता है। इसी प्रकार काल, कारक, साधन, पुरुषादि का भी विचार कर लेना चाहिये (विशेष सर्वार्थसिद्धि में देखो)

समभिरूढ़नयो यथा गौः पशुः ।

अर्थ–एक शब्द के नाना अर्थ होते हुए भी, जो एक प्रसिद्ध या रूढ़ि अर्थ को ग्रहण करे, वह समभिरूढनय है। जैसे–गौ शब्द का अर्थ गमन करना भी है, तो भी चलते फिरते या बैठे सोते हर अवस्था में गाय पशु को गौ कहना, क्यों कि गौ शब्द का रूढ़ि अर्थ गाय ही होता है।

एवंभूतनयो यथा इन्दनीति इन्द्रः ।

अर्थ–जिस काल में जो कोई, जो कुछ क्रिया कर रहा हो, उसको उस काल में उसी रूप ग्रहण कहना, सो एवंभूत नय है। जैसे देवों के स्वामी इन्द्र को जब वह परम ऐश्वर्य रूप वर्त रहा होवे, तभी इन्द्र कहना। अन्य काल में सोते बैठते पूजादि कार्य करते इन्द्र नहीं कहना।

इस प्रकार शास्त्रीय पर्यायार्थिक के ४ भेदों का स्वरूप कहा।

उक्ता अष्टाविंशतिर्नयभेदाः ।

इस प्रकार नयों के २८ भेदों का प्रतिपादन किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपनयभेदा कथ्यन्ते ।

अर्थ--अब उपनय के भेदों का कथन करते हैं, इसे व्यवहार नय भी कहते हैं। इसके मुख्य तीन भेद हैं। सद्भूत व्यवहार, असद्भूत व्यवहार और उपचरितासद्भूत व्यवहार। यथा—

सद्भूत व्यवहार–उसे कहते हैं, जो अखण्ड द्रव्यों में गुण गुणी या पर्याय पर्यायी की भेद कल्पना करे वह--

सद्भूतव्यवहारो द्विधा ।

अर्थ--सद्भूतव्यवहारनय दो प्रकार का है। शुद्ध और अशुद्ध ।

शुद्धसद्भूतव्यवहारो यथा शुद्धगुणशुद्धगुणिनोः शुद्धपर्यायशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् ।

अर्थ–जो शुद्ध द्रव्य में शुद्ध गुणी और शुद्ध गुण, तथा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायी का भेद कथन करे, उसे **शुद्धसद्भूतव्यवहार** नय कहते हैं। जैसे सिद्धात्मा के केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्त सुख व अनन्त वीर्यादि गुणों तथा सिद्धात्मा की शुद्ध सिद्ध पर्याय का भेद कथन करना।

अशुद्धसद्भूतव्यवहारो, यथा–अशुद्धगुणाऽशुद्ध-गुणिनो रशुद्धपर्यायाऽशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् ।

अर्थ—जो अशुद्ध द्रव्यों के अशुद्ध गुण और अशुद्ध गुणी, तथा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायी का भेद कथन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करे, उसे अशुद्धसद्भूतव्यवहार नय कहते हैं। जैसे संसारी जीव के मति आदि क्षायोपशमिक ज्ञान, तथा नरनारकादि पर्यायें कहना।

इति सद्भूतव्यवहारोऽपि द्वेधा।

अर्थ—इस प्रकार सद्भूत व्यवहार के भी दो भेदों का कथन किया।

असद्भूतव्यवहार नय–उसे कहते हैं, जो अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र समारोप करे।

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

अर्थ-असद्भूत व्यवहार नय के भेद तीन हैं। सजाति, विजाति और सजाति–विजाति।

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो, यथा–परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथनमित्यादि।

अर्थ–जो अपने सजातीय पदार्थों में अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र समारोप करे, उसे सजातिअसद्भूतव्यवहार नय कहते हैं। जैसे परमाणु को बहु प्रदेशी (कायवान) कहना, क्यों कि उस में अन्य परमाणुवों से मिलने की शक्ति है।

विजात्यसद्भूतव्यवहारो, यथा–मूर्तं मतिज्ञानं यतो मूर्त्तद्रव्येण जनितम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–जो विजातीय पदार्थों में अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म को अन्यत्र समारोप करे, वह **विजातिअसद्भूतव्यवहार** नय है जैसे मति ज्ञान को मूर्तीक कहना क्यों कि वह मूर्त पदार्थ के निमित्त से होता है।

स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो, यथा ज्ञेये-जीवेऽजीवे, ज्ञानमिति कथनम्, ज्ञानस्य विषयात्।

अर्थ–जो स्वजाति या विजाति पदार्थों में अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म को अन्यत्र समारोपण करे, वह **सजातिविजाति असद्भूतव्यवहार** नय है। जैसे ज्ञेय जीव और अजीव पदार्थों को ज्ञान कहना, क्यों कि वे ज्ञान के विषय होते हैं।

इत्यसद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

अर्थ–इस प्रकार असद्भूतव्यवहार नय के तीन भेदों का वर्णन किया।

विशेष (जैन सिद्धान्त दर्पण में स्व० पं० गोपालदास जी ने) उक्त सद्भूत व्यवहार नय के तीनों भेदों के और भी नव २ उपभेद बताये हैं। यथा—(१) द्रव्य में द्रव्य का समारोप (२) द्रव्य में गुण का (३) द्रव्य में पर्याय का (४) गुण में गुण का (५) गुण में द्रव्य का (६) गुण में पर्याय का (७) पर्याय में पर्याय का (८) पर्याय में गुण का (९) पर्याय में द्रव्य का समारोप करना जैसे—(१) चन्द्र के विंब को चन्द्र कहना, यहां सजातीय पर्याय में सजातीय पर्याय का समारोप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। (२) मति ज्ञान को मूर्तीक कहना, इसमें विजातीय गुण में विजातीय गुण का समारोप है (३) ज्ञान के विषय जीव, अजीव को ज्ञान कहना, इसमें सजाति विजाति द्रव्य में सजाति विजाति गुण का समारोप है। (४) परमाणु को बहु प्रदेशी कहना, यहां सजाति द्रव्य में सजाति विभाव पर्याय का समारोप है। (५) ज्ञान को जीव कहना, यहां सजाति गुणमें द्रव्य का समारोप है। इत्यादि इसी प्रकार अन्यत्र यथा योग्य समझना चाहिये।

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय उसे कहते हैं, जो प्रयोजन और निमित्त के वश से, अन्य पदार्थों का अन्य पदार्थों में उपचारोपचार करे।

उपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

अर्थ--उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय तीन प्रकार का है-सजाति, विजाति और स्वजाति-विजाति। यथा--

स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो, यथा-पुत्रदारादि मम।

अर्थ—सजाति पदार्थों में, निमित्त व प्रयोजन के वश से उपचारोपचार करना। सो सजातिउपचरितअद्भूतव्यवहार नय है। जैसे, पुत्र स्त्री आदि मेरे हैं॥ १॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो, यथा—वस्त्राभरणहेमरत्नादि मम।

अर्थ—विजातीय पदार्थों में निमित्त और प्रयोजन के वश से उपचारोपचार करना, वह विजातिउपचरितअसद्भूतव्यवहार नय है। जैसे, वस्त्राभूषण सुवर्ण रत्नादि मेरे हैं॥ २॥

स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो, यथा—देशराज्यदुर्गादि मम।

अर्थ—सजातिविजातिउपचरितअसद्भूतव्यवहार नय उसे कहते हैं, जो सजाति विजातीय पदार्थों में निमित्त व प्रयोजन के वश से उपचारोपचार करे, जैसे देश राज्य दुर्ग आदि मेरे हैं॥ ३॥

इत्युपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

अर्थ—इस प्रकार उपचरितअसद्भूत व्यवहार के तीन भेदों का वर्णन किया।

उक्ता अष्टाविंशतिर्नयभेदाः।

अर्थ—इस प्रकार निश्चय के पच्चीस और व्यवहार के तीन सब मिल कर २८ नय भेदों का कथन समाप्त हुआ। अब इन्हीं के भेद प्रभेदों को परिशिष्ट सं० ४-५ में दिखाया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

परिशिष्ट संख्या ५

व्यवहार नय (उपचार या उपनयन)

- सद्भूत
  - शुद्ध
  - अशुद्ध
- असद्भूत
  - सजाति
  - विजाति
  - सजाति विजाति
    - पर्याय में द्रव्य का समारोप
    - पर्याय में गुण का समारोप
    - पर्याय में पर्याय का समारोप
    - गुण में पर्याय का समारोप
    - गुण में गुण का समारोप
    - गुण में द्रव्य का समारोप
    - द्रव्य में पर्याय का समारोप
    - द्रव्य में गुण का समारोप
    - द्रव्य में द्रव्य का समारोप
- उपचरित असद्भूत
  - सजाति
  - विजाति
  - सजाति-विजाति

ये समारोप के नव भेद असद्भूत के सजाति, विजाति, तथा सजाति विजाति तीनों के होते हैं अर्थात् सब के सत्तावीस हुए।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार द्रव्य गुण स्वभाव तथा पर्यायों का सामान्य स्वरूप कह कर आगे उसी को स्पष्ट करते हैं ।

ऊपर कहा गया है कि "गुणपर्ययवद्द्रव्यम्" अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय वाला होता है। तब प्रश्न होता है कि गुण और पर्याय किसे कहते हैं ? इसी का उत्तर यहां आचार्य कहते हैं, यथाः--

सहभावा गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः ।

अर्थ --जो द्रव्य के साथ सर्व प्रदेशों में सदा काल (हर अवस्था में) व्याप्त कर अर्थात् तन्मयी होकर रहैं, उनको गुण और जो एक के पीछे दूसरी, फिर तीसरी इत्यादि अवस्थाओं में क्रम से रहैं अर्थात् जिनकी काल क्रम से अनन्त अवस्थाएँ बीत गई हों, व अनन्त होने वाली होवें, और एक अवस्था वर्तमान हो, अथवा जो एक समय में एक ही रहती हो परन्तु अपनी भूत और भावी अवस्थाओं को आगे पीछे जोड़ रूप सन्तान क्रम से रक्खे, उसे पर्याय कहते हैं ।

गुण्यन्ते प्रथक्क्रियन्ते द्रव्यं द्रव्याद्यैस्ते गुणाः ।

अर्थ—जो द्रव्य को द्रव्यान्तरों से पृथक करे उसे गुण कहते हैं। यहां गुण से अभिप्राय लक्षण या विशेष स्वभाव व गुण समझना चाहिये, क्यों कि न्याय दीपिका में लक्षण का लक्षण ऐसा ही किया है । यथा-- "परस्परव्यतिकीर्णे वस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणं" अर्थात् परस्पर मिले हुए पदार्थों में से पदार्थ विशेष को प्रथक् करण करने में जो हेतु हो, उसे लक्षण कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्तीत्येतस्यंभावोऽस्तित्वंसद्रूपत्वम् ।

अर्थ—जिस गुण के कारण द्रव्य की सत्ता बनी रहे, अर्थात् उसका अस्तित्व बना रहे, उसे अस्तित्व या सत्ता गुण कहते हैं ।

वस्तुनो भावो वस्तुत्वं ।

अर्थ—जिस गुण के कारण वस्तु में वस्तुत्व अर्थात् अर्थ क्रियाकारित्व हो जैसे घड़े में जल धारण होना उसको अर्थ क्रिया है, उसे वस्तुत्वगुण कहते हैं ।

सामान्यविशेषात्मकं वस्तु ।

अर्थ—वस्तु का स्वरूप सामान्य विशेषात्मक होता है ॥।

द्रव्यस्वभावो द्रव्यात्वम् ।

अर्थ—जिस गुण के निमित्त से वस्तु सदा एकसी कूटस्थ न रह कर नवीन २ अवस्थाओं का ग्रहण तथा पूर्व २ अवस्थाओं का त्याग रूप परिणमन करती रहे, उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं ।

निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्या स्वभावविभावपर्यायान द्रवनि दोष्याति अदुद्रवदिति द्रव्यम् ।

अर्थ-अपने अपने प्रदेश समूहों सहित,जो अखण्डवृत्ति से स्वभाव किंवा विभाव पर्यायों को प्राप्त होवे, व प्राप्त करावे सो द्रव्य कहाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्द्रव्यलक्षणम् ।

अर्थ--द्रव्य का लक्षण सत् है ।

सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् ।

अर्थ--जो सदैव अपने गुण और पर्यायों में व्याप कर रहे वह सत् कहाता है । अथवाः--

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।

अर्थ--जो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य सहित हो वह सत् है ।

प्रमेयस्वभावः प्रमेयत्वम् ।

अर्थ--जिस गुण के कारण पदार्थ किसी न किसी ज्ञान का (प्रमाण) का विषय होवे, उसे प्रमेयत्वगुण कहते हैं ।

प्रमाणेन स्वपरस्वरूपपरिच्छेद्यं प्रमेयम् ।

अर्थ--प्रमाण के द्वारा स्वस्वरूप तथा परस्वरूप जिसका प्रगट होवे अर्थात् जाना जावे उसे प्रमेय कहते हैं अथवा जो प्रमाण का विषय होवे वह प्रमेय कहाता है ।

अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम् ।

अर्थ--जिस गुण के निमित्त से द्रव्य का द्रव्यपना सदा वना रहे अर्थात् द्रव्य का कोई गुण न तो अन्य गुण रूप हो सके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और कोई द्रव्य अन्य द्रव्य रूप हो सके, अथवा जिसके निमित्त से प्रत्येक द्रव्य में तथा उसके गुणों में समय २ प्रति (पहिले कहे अनुसार क्रम से) षट् गुणी हानि वृद्धि होती रहे, उसे अगुरुलघुगुण कहते हैं। तथाः—

सूक्ष्मा वागगोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगम-प्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः ।

अर्थ—अगुरुलघु गुण का सूक्ष्म परिणमन जो समय २ प्रति होता रहता है, वह वचन के अगोचर है। और आगम प्रमाण से जाना जाता है।

उक्तंच—सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः॥५॥

अर्थ—भगवान सर्वज्ञ (जिनेन्द्र) के कहे हुए सूक्ष्म तत्त्वों का जिनका हेतु व प्रमाणों से खंडन नहीं हो सकता है, उन को आज्ञा प्रमाण ही से स्वीकार करना चाहिये, क्यों कि जिनेन्द्र भगवान अन्यथा (मिथ्या) वादी नहीं होते हैं। कारण कि अन्यथा वे ही कह सकेंगे, जिनके राग द्वेष मोह अथवा ख्याति लाभ तथा पूजादि की चाह होगी। वह जिनेन्द्र में नहीं हैं, वे परम वीतरागी और सर्वज्ञ हैं। और अपने पूर्वकाल में बांधी हुई शुभ वचन वर्गणा के उदय से, भव्य जीवों के पुण्य कर्म के निमित्त को पाकर बिना ही इच्छा के, भव्य जीवों के हितार्थ वस्तु स्वरूप का कथन करते हैं, इसलिये उनका कथन यथार्थ ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागि पुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम् ।

अर्थ—जिस गुण के निमित्त से द्रव्य-प्रदेशत्व या क्षेत्रपने को प्राप्त हो अर्थात् उसके क्षेत्र विस्तार का माप हो सके उसे प्रदेशत्व गुण कहते हैं । और जितने आकाश के क्षेत्र को एक अविभागी पुद्गल परमाणु घेरकर रहे, उतने क्षेत्र के माप को प्रदेश कहते हैं । समस्त अमूर्तिक द्रव्यों का माप इसी से किया जाता है । जैसे आकाश अनंत प्रदेशी धर्म, अधर्म और प्रत्येक जीव * असंख्यात प्रदेशी , कालाणु एक प्रदेशी और पुद्गल असंख्यात तथा अनंत प्रदेशी होते हैं

चेतनस्य भावश्चेतनत्वं, चैतन्यमनुभवनम् ।

अर्थ—जिस गुण के निमित्त से द्रव्य में प्रतिभासकता (जानने की शक्ति) होवे, अथवा जीव अजीवादि पदार्थों का अनुभवन कर सके, या चेतना मात्र का अनुभवन करे, वह चेतनत्व गुण है ।

उक्तंच–चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च ।
क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम् ॥८॥

---

* जीव में संकोच विस्तार शक्ति होने से वह सूक्ष्म अलब्धपर्याप्तक निगोद के शरीर में सूक्ष्म (संकोच) रूप और केवलि समुद्घात् के समय लोक प्रमाण विस्तार को प्राप्त हो जाता है, तो भी अपने असंख्यात प्रदेशों की संख्या को हीनाधिक रूप नहीं करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—अनुभूति ही चेतना कहाती है वह क्रिया रूप होती और क्रिया,मन, वचन और काय के योगों द्वारा सदैव होती है।

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमननुभवनम् ।

अर्थ—जिस गुण के निमित्त से द्रव्य जाना तो जाय, पर जान न सके अचेतनत्व गुण है। अर्थात् जीवादि पदार्थों को स्वयं ना जान सके, सो अचेतनत्व है।

मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्वम् ।

अर्थ—जिस गुण के निमित्त से द्रव्य मूर्त्तपने अर्थात् स्पर्श रस गन्ध तथा वर्ण स्वरूप होवे, उसे मूर्त्तत्त्व या रूपोपना कहते हैं।

अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहितत्वम् ।

अर्थ—जिस गुण के निमित्त से द्रव्य अमूर्तपने अर्थात् स्पर्श रस, गंध तथा वर्णपने से रहित होवे, वह अमूर्त्तत्त्व गुण है।

इति गुणानां व्युत्पत्तिः ।

अर्थ—इस प्रकार से गुणों की व्युतिपत्ति कही।

स्वभावविभावरूपयता याति, पर्येति, परिणमतीति, पर्याय इति पर्यायस्य व्युत्पत्तिः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ-- जो स्वाभाव या विभाव रूप से परिणमन करे, पल्टे अर्थात् होजावे, वह पर्याय है। अर्थात् पदार्थों की समय प्रति समय वर्ती अवस्था को पर्याय कहते हैं। इस प्रकार पर्याय की व्याख्या की।

अब स्वभाव की व्याख्या कहते हैं।

स्वभावलाभादच्युतत्वादस्तिस्वभावः।

अर्थ--स्वभाव के प्राप्त होने पर जो कभी फिर उस से च्युत नहीं होवे अर्थात् स्वभाव की प्राप्ति होने पर सदा उसी रूप रहे, पुनः अन्य रूप न होवे वह अस्तिस्वभाव कहाता है। जैसे द्रव्य स्वद्रव्यादिचतुष्टय की अपेक्षा सदा अस्ति स्वरूप रहता है।

परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः।

अर्थ--अपने में परस्वरूप का अभाव होने से नास्ति स्वभाव कहाता है। जैसे द्रव्य पर द्रव्यादिचतुष्टय की अपेक्षा नास्तिस्वभाव स्वरूप है।

निजनिज-नानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्यस्वभावः।

अर्थ--अपनी अपनी अनेकों पर्यायों में "यह वही है जो पहले था" ऐसी उपलब्धि (जानकारी) कराने वाला नित्य स्वभाव कहाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्याप्यनेकपर्यायपरिणामित्वादनित्यस्वभावः।

अर्थ--और उसी का अनेक पर्याय स्वरूप परिणमन होना सो अनित्यस्वभाव कहाता है।

स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः।

अर्थ--अनेक स्वभाव का एक आधार रूप होने से एक स्वभाव कहाता है।

एकस्याप्यनेकस्वभावोपलम्भादनेकस्वभावः।

अर्थ--एक ही द्रव्य (आधार) में अनेक स्वभावों का अनुभवन होने से अनेकस्वभाव कहाता है।

गुणगुण्यादिसंज्ञाभेदाद् भेदस्वभावः

अर्थ-गुण में और गुणी में संज्ञा, संख्या, लक्षण व प्रयोजन के वश से भेद रूप कहना, सो भेद स्वभाव कहाता है।

संज्ञासंख्यालक्षणप्रयोजनानि गुणगुण्याद्येकस्वभावादभेदस्वभावः।

अर्थ--संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन के वश से गुण गुणी में, भेद कथन होने पर भी, प्रदेश भेद न होने से, अर्थात् गुण-गुणी का तादात्म्य होने से, अभेदस्वभाव कहाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाविकाले परस्वरूपाकारभवनात् भव्यस्वभावः ।

अर्थ--आगामी काल में पर (उत्कृष्ट) स्वरूप हो सकने की शक्ति होने से भव्य स्वभाव कहाता है।

कालत्रयेऽपि, परस्वरूपाकाराभवनादभव्य-स्वभावः ।

अर्थ--त्रिकाल में भी पर स्वभाव (सिद्ध स्वभाव) को नहीं प्राप्त हो सकने के कारण अभव्य स्वभाव कहाता है।

उक्तंच-अण्णोण्णं पविसंता दिंता उग्ग समण्णमण्णस्स ।
मेलंता विय णिच्चं सगसगभावं ण विजहंति॥७॥

(पं० का०)

अर्थ—समस्त द्रव्य परस्पर अवगाह देते अर्थात् प्रवेश करने देते हैं, और सभी परस्पर निःसंकोच भाव से मिल भी रहे हैं। तो भी वे सब मिलकर एक नहीं होगये, न होंयगे, और न हो ही सकते हैं। सब अपने अपने भावों को अर्थात् गुण पर्यायों को नहीं छोड़ते हैं। तात्पर्य एक ही क्षेत्र में समस्त द्रव्यों के रहने पर भी न तो उनमें संकीर्णता ही होती है और न वे परस्पर मिलकर शंकर या एक रूप ही होजाते हैं; किन्तु स्व स्वरूप ही रहते हैं । द्रव्य द्रव्यरूप, गुण गुणरूप और पर्यायें पर्यायरूप रहते हैं।

पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ–पारणामिक भावों (जिनमें कर्म आदि पर द्रव्यों की अपेक्षा न हो) को प्रधानता होने से परमस्वभाव कहाता है ।

इतिसामान्यस्वभावानां व्युत्पत्तिः ।

अर्थ–इस प्रकार सामान्य स्वभावों की व्याख्या कही ।

प्रदेशादिगुणानां व्युत्पत्तिश्चेतनादिविशेषस्वभावा नांच व्युत्पत्तिर्निगदिता ।

अर्थ–प्रदेशादि गुणों की और चेतनादि विशेष स्वभावों, की व्याख्या भी कही ।

अब द्रव्यों का कुछ वर्णन करते हैं ।

धर्मापेक्षया स्वभावा गुणा न भवन्ति ।

अर्थ–धर्म (स्वभाव) की अपेक्षा से स्वाभाव गुण नहीं होते, किन्तु

स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावा भवन्ति ।

अर्थ–अपने २ द्रव्य क्षेत्र काल तथा भाव की अपेक्षा से गुण ही परस्पर स्वभाव हो जाते हैं ॥ तथा—

द्रव्याण्यपि भवन्ति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ-द्रव्य भी स्वभाव हो जाते हैं।

स्वभावादन्यथाभवनं विभावः।

अर्थ-स्व-भाव से विपरीत होने को विभाव कहते हैं।

शुद्धं केवलभावमशुद्धं तस्यापि विपरीतम्।

अर्थ-भाव मात्र जिस (जिस में पर का सम्बन्ध न हो) को शुद्ध भाव और उससे विपरीति पर निमित्त से (कर्म के सम्बन्ध से) बुरे भावों को अशुद्ध भाव कहते हैं। जैसे औपशमिक तथा औदयिक आदि भाव।

स्वभावस्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावः।

अर्थ—स्वभाव का अन्यत्र भी उपचार करना सो उपचरित स्वभाव है।

सद्वेधा कर्मजस्वाभाविकभेदात्।

वह उपचरित स्वभाव कर्म जन्य और स्वभाविक भेदों से दो भेद रूप है।

यथा जीवस्य मूर्तत्वमचेतनत्वं तथा सिद्धाना परज्ञता परदर्शकत्वंच।

अर्थ-जैसे (कर्म सहित) जीव के मूर्तीक तथा अचेतनपना अथवा (स्वभाविक शुद्ध) सिद्धों को पर पदार्थों का ज्ञातृत्व तथा दर्शकत्व होना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवमितरेषां द्रव्याणामुपचारो यथा सम्भवोज्ञेयः।

अर्थ-इसी प्रकार अन्य द्रव्यों में भी यथा संभव उपचार जानना चाहिये।

उक्तंच-दुर्नयैकान्तमारूढा भावानां स्वार्थिका हि ते।
स्वार्थिकाश्चविपर्यस्ताः सकलङ्का नया यतः॥८॥

अर्थ- जो नयें एकान्त पक्ष का अवलंवन करके पदार्थों का कथन करने वाली होती हैं, वे दुर्नयें हैं और स्वार्थिका अर्थात् विषय कषायों को पोषण करने वाली हैं। (सोही छः ढाला में पं० दौ० जी ने कहा है "एकान्तवाद दूषित समस्त। विषयादिक पोषक अप्रशस्त" ॥) और स्वार्थिका होने से विपर्यय तथा सदोष हैं, त्याज्य हैं॥

तत्कथं तथाहि-सर्वथैकान्तेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था संकरादिदोषत्वात् तथाऽसद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसंगतात्, नित्यस्यैकरूपत्त्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः

अर्थ-वह किस प्रकार है, ऐसा प्रश्न होने पर उसी को स्पष्ट कहते हैं। द्रव्य को सर्वथा एकान्त पक्ष से यदि सत्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप ही माना जाय, तो उस में कोई व्यवस्था ही नहीं बन सकती है, क्यों कि शंकर आदि अनेक दोष आजाते हैं। तथा असत्रूप माना जाय तो सर्वथा शून्यता का भी प्रसंग आता है। यदि द्रव्य सर्वथा नित्य है, ऐसा माना जाय तो नित्य द्रव्य एक रूप ही होता है, उन पदार्थों में अर्थक्रियाकारित्व नहीं बन सकेगा और अर्थ और जो एक रूप हैं क्रियाकारित्व के न होने से द्रव्य के अभाव का भी प्रसंग आवेगा।

अनित्यपक्षेऽपि अनित्यरूपत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः।

अर्थ—सर्वथा अनित्य (क्षणिक) मानने से भी अर्थ क्रियाकारित्व नहीं बनेगा और उसके अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायगा।

एकस्वरूपस्यैकान्तेन विशेषाभावः सर्वथैकरूपत्वात् विशेषाभावे सामान्यस्याप्यभावः।

अर्थ—सर्वथा एकान्त पक्ष से यदि पदार्थ को एक ही स्वरूप मानें, तो विशेष का अभाव हो जायगा, और सर्वथा एक रूप होने अर्थात् विशेष के अभाव होने से सामान्य का भी अभाव हो जायगा। इस प्रकार सामान्य तथा विशेष धर्मों के अभाव में धर्मी पदार्थ का भी अभाव हो जायगा। सो ही कहा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तंच–निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत् खरविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि ॥६॥

इति ज्ञेयः ।

अर्थ—सामान्य विना विशेष और विशेष विना सामान्य भी गधे के सींग के समान असम्भव है । तात्पर्य–इनका परस्पर अविनाभावी सम्बन्ध है । अर्थात् ये दोनों परस्पर एक दूसरे के विना रह ही नहीं सकते हैं, इस लिये सर्वथा एकान्त पक्ष स्थापित करने से अनन्त धर्मात्मक पदार्थ की निर्दोष सिद्धि नहीं हो सकती है ऐसा जनना चाहिये ।

अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो, निराधारत्वात् आधाराधेयाभावाच्च ।

अर्थ–सर्वथा अनेक स्वरूप मानने पर भी उसी प्रकार द्रव्य का अभाव ठहरेगा, क्यों निराधार होने अथवा आधार आधेय भाव के अभाव होने से, द्रव्य का भी अभाव हो जावेगा ।

भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां, निराधारत्वादर्थ-क्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे, द्रव्य-स्याप्यभावः ।

अर्थ—सर्वथा भेद पक्ष मानने से, विशेष स्वभावों का निराधारपना होने के कारण अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जायगा और अर्थक्रियाकारीपना के अभाव होने से द्रव्य के अभाव का भी प्रसंग आवेगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभेदपक्षेऽपि सर्वेषामेकत्वम्, सर्वेषामेकत्वेऽर्थ-क्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्य-स्याप्यभावः।

अर्थ—सर्वथा अभेद पक्ष मानने पर भी सब द्रव्यों के एकत्व का प्रसंग आवेगा और एकपने के होने से अर्थ क्रिया कारीपना का अभाव हो जायगा, तथा उसके अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायगा।

भव्यस्यैकान्तेन पारिणामिकत्वात् द्रव्यस्य द्रव्यान्तरत्वप्रसंगात् संकरादिदोषसम्भवात्।

अर्थ—सर्वथा भव्यत्य स्वभाव मानने पर भी पारिणा-मिक अर्थात् भव्यत्त्व, अभव्यत्त्व तथा जीवत्व भाव होने के कारण द्रव्य से द्रव्यान्तर पने को प्राप्त होने का प्रसंग आवेगा तथा संकरादि दोष भी आवेंगे।

संकरव्यतिकरविरोधवैयधिकरण्यानवस्थासंश-याप्रतिपत्यभावाश्चेति।

अर्थ—संकर[१], व्यतिकर[२], विरोधी[३], वयधिकरण[४], अनवस्था[५], संशय[६], अप्रतिपत्ति[७], और अभाव[८] ये आठ * दोष

---

* इन दोषों का विशेष विवरण प्रमेयकमलमार्तण्डादि न्याय ग्रन्थों से जानना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं। इसलिये वस्तु का स्वरूप विचारते समय इनको बचाना चाहिये, अन्यथा वस्तु स्वरूप का यथार्थ बोध न हो सकेगा।

सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथाशून्यताप्रसङ्गात्

अर्थ--सर्वथा अभव्य स्वभाव मानने से भी वही शून्यता का प्रसंग आवेगा।

स्वभावस्वरूपस्यैकान्तेन संसाराभावः।

अर्थ—सर्वथा स्वभाव स्वरूप मानने से संसार का अभाव हो जायगा।

विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः।

अर्थ—सर्वथा विभाव स्वरूप मानने से मोक्ष का भी अभाव होजायगा।

सर्वथा चैतन्यमेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः स्यात् तथा सति ध्यान ध्येयं, ज्ञानंज्ञेयं, गुरु शिष्याद्यभावः।

अर्थ--सर्वथा चैतन्य मानने से सर्व पदार्थों के शुद्ध ज्ञान, दर्शनादि चेतना के सद्भावपना का प्रसंग आवेगा। और ऐसा होने पर ध्यान और ध्येय, ज्ञान और ज्ञेय, तथा गुरु और शिष्यादि के अभाव का भी प्रसंग आवेगा।

सर्वथा शब्दः सर्व प्रकारवाची? अथवा सर्वकालवाची? अथवा नियमवाची? वा अनेकान्त सापेक्षीवा? (प्रश्न)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सर्वथा शब्द, सर्व प्रकार वाची है ? या सर्वकाली वाची है ? या नियम वाची है ? अथवा अनेकान्त सापेक्षी है ? कैसा है ? प्रश्न ।

यदि सर्वकालवाची, सर्वप्रकारवाची, अनेकान्त वाची वा,सर्वादिगणे पठनात् सर्वशब्द एवंविधिश्चेत्तर्हि सिद्धं नः समीहितम् ।

अर्थ - यदि "सर्व" शब्द सर्वादि गण में पढ़ने से, सर्व काल वाचक सर्व प्रकार वाचक अथवा अनेकान्त वाचक हो, तो हमको इष्ट है ।

अथवा नियमवाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात् ? नित्यः, अनित्यः, एकः, अनेकः, भेदः, अभेदः, कथं प्रतीतिः स्यात् नियामितपक्षत्वात् ।

अर्थ—यदि नियमवाची है तो समस्त पदार्थों की प्रतीति तुम को कैसे होगी ? अर्थात् नियमवाची होने से नित्य, अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद इत्यादि की प्रतीति भी कैसे होगी ?

तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात् ।

अर्थ--सर्वथा अचेतनपना मानने से समस्त चैतन्य का उच्छेद हो जायगा ।

मूर्त्तस्यैकान्तेनात्मनोमोक्षस्यावाप्तिः स्यात् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सर्वथा-मूर्त्तस्वभाव मानने से आत्मा के मोक्ष के अभाव का प्रसंग अवेगा।

सर्वथाऽमूर्त्तस्यापि नथात्मनः संसारविलोपः स्यात्।

अर्थ—सर्वथा अमूर्तस्वभाव मानने से आत्मा के संसारीपने का अभाव हो जावेगा।

एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेक कार्यकारित्व एव हानिः स्यात्।

अर्थ—सर्वथा एक प्रदेशी मानने पर अखण्ड परिपूर्ण आत्मा के अनेक कार्यकारकपने में हानि आवेगी।

सर्वथाऽनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थकार्यकारित्वं स्वस्वभावशून्यताप्रसंगात्।

अर्थ—सर्वथा अनेक प्रदेशीकपना मानने में भी उसी प्रकार आत्मा के अनर्थकार्यकारीपना हो जायगा, अपने स्वभाव की शून्यता (अभाव) होने के कारण से।

शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्ममलकलंकावलेपः सर्वथा निरञ्जनत्वात्।

अर्थ—सर्वथा शुद्ध मानने पर आत्मा को कर्म मल कलंक नहीं लगेगा क्यों कि वह सर्वथा शुद्ध है। और शुद्धात्मा को वंध का कोई कारण नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथात्मनो न कदापि शुद्ध स्वभावप्रसंगः स्यात् तन्मयत्वात् ।

अर्थ--सर्वथा अशुद्ध मानने पर भी जीव उसी प्रकार कभी भी शुद्ध न हो सकेगा, क्यों कि वह अशुद्धता से तन्मयी है।

उपचरितैकान्तपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति, नियमितपक्षत्वात् ।

अर्थ—सर्वथा उपचरित * पक्ष मानने पर भी नियमित पक्ष होने से आत्मज्ञता ही संभव नहीं होगी।

तथात्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीना विरोधः स्यात् ।

अर्थ—सर्वथा उपचरित स्वभाव के समान आत्मा के अनुपचरित स्वभाव सर्वथा मानने पर उसी प्रकार परज्ञता (पर पदार्थों का ज्ञान) होने में विरोध आवेगा। इसलिये—

उक्तंच—नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ।
तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयामिश्रितं कुरु॥१०॥

अर्थ—प्रमाण द्वारा पदार्थों को अनन्त धर्मात्मक जान करके, उनकी सापेक्ष सिद्धि करने के लिये नय वाचक स्यात्

नोट—* मुख्य पदार्थों के अभाव में प्रयोजन और निमित्त के वश से उपचार की प्रवृत्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(कथंचित्) शब्द का संयोग करो, तब ही पदार्थों के यथार्थ स्वरूप की सिद्धि हो सकेगी।

यथा—स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वः भावः।

अर्थ—जैसे अस्तिस्वभाव के साथ स्यात् पद लगा देने से स्यदस्ति स्वभाव है ऐसा हो जायगा, तब इसका अर्थ होगा द्रव्य कथंचित् है। अर्थात् किसी अपेक्षा अस्ति स्वभाव वाला है, और किसी अपेक्षा और स्वभाव वाला भी है, जैसे द्रव्य स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा अस्ति स्वभाव वाला है। परन्तु—

परद्रव्यादिग्राहकेण नास्तिस्वभावः।

अर्थ—पर द्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (पर चतुष्य) की अपेक्षा नास्ति स्वभाव वाला भी है। तात्पर्य-स्वचतुष्टय की अपेक्षा रखने से है और पर चतुष्टय की अपेक्षा रखने से नहीं है। यदि इन धर्मों के साथ स्यात् पद न लगाया जाय, तो ये धर्म पदार्थों के एक ही अंश को ग्रहण करके सर्वांश बताने वाले समझे जाते हैं, जिससे ऊपर बताये अनुसार अनेकों दोष आजाते हैं। इसलिये स्यात् पद लगाने से वे ही धर्म सापेक्ष समझे जाकर पदार्थ की यथार्थ सिद्धि कर देते हैं। इस प्रकार इसी स्यात् पद को लगाके पदार्थों के स्वरूप का कथन करना स्याद्वाद कहाता है। इस लिये सब धर्मों के साथ इसी प्रकार स्यात् शब्द लगाकर पदार्थों के यथार्थ और सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान करना चाहिये। इसी प्रकार यहां और कुछ धर्मों की सापेक्षिता बताते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः ।

अर्थ—उत्पाद व्यय को गौण कर केवल सत्ता ग्राहक नय से नित्य स्वभाव है ।

केनचित्पर्यायार्थिकेनानित्यस्वभावः ।

अर्थ—किसी भी पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अनित्य स्वभाव है ।

भेदकल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभावः ।

अर्थ—भेदकल्पनानिरपेक्षनय (अभेद विवित्ता) से एक स्वभाव है ।

अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेकद्रव्यस्वभावत्वं ।

अर्थ—अन्वय द्रव्यार्थिक नय (सर्व पर्यायों में द्रव्य का अन्वय होते रहने) से एक होने पर भी, भेद विवित्ता से अनेक द्रव्यस्वभावपना है ।

सद्भूतव्यवहारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः ।

अर्थ—सद्भूत व्यवहार नय से गुण गुणी आदि में भेद होने से भेद स्वभाव है ।

भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्यादिभिरभेद-स्वभावः ।

अर्थ—भेदकल्पनानिरपेक्षनय से गुण गुणी आदि में अभेद स्वभाव है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः।

अर्थ—परमभावग्राहकनय से भव्य तथा अभव्य पारिणामिक स्वभाव हैं।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण चेतनस्वभावो जीवस्य।

अर्थ शुद्ध, अशुद्ध परमभावग्राहक ग्राहक नय से जीव का चेतन स्वभाव है।

असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः।

अर्थ–असद्भूतव्यवहार नय से कर्म नोकर्म भी चेतन स्वभाव कहे जाते हैं।

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः।

अर्थ—परमभावग्राहक नय से कर्म नोकर्म अचेतन स्वभाव वाले हैं।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः।

अर्थ—असद्भूतव्यवहार नय से जीव भी अचेतन स्वभाव कहा जाता है।

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोर्मूर्त्तस्वभावः।

अर्थ—परमभावग्राहकनय से कर्म नोकर्म मूर्त्तीक स्वभाव होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तस्वभावः ।

अर्थ—असद्भूतव्यवहारनय से जीव का भी मूर्त्तिक स्वभाव कहाता है ।

परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त्त-स्वभावः ।

अर्थ—परमभावग्राहक नय से पुद्गल के बिना अन्य पांच (जीव, धर्म, अधर्म, काल और आकाश) द्रव्य अमूर्त्तीक स्वभाव हैं ।

पुद्गलस्योपचारादपि नास्त्यमूर्त्तत्वम् ।

अर्थ—पुद्गल का उपचार से भी अमूर्त्त स्वभाव नहीं कहा जाता ।

परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेश-स्वभावत्वं ।

अर्थ—परमभावग्राहक नय से कालाणु और पुद्गलाणु का एक प्रदेश स्वभावपना है ।

भेदकल्पनानिरपेक्षेणेतरेषां धर्माधर्माकाशजीवानां चाखण्डत्वादेकप्रदेशत्वम् ।

अर्थ—भेदकल्पनानिरपेक्ष नय से धर्म अधर्म आकाश और प्रत्येक जीव के भी अखण्डपने की अपेक्षा एक प्रदेश स्वभाव है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेदकल्पनासापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेश-स्वभावत्वम् ।

अर्थ—भेदकल्पनासापेक्ष नय से उक्त चारों द्रव्यों के नाना प्रदेश स्वभाव भी होते हैं ।

पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशत्वं, नचकालाणोः स्निग्धरूक्षत्वाभावात् ।

अर्थ—उपचार से पुद्गल के भी नानाप्रदेशस्वभाव कहा जाता है, परन्तु कालाणु के स्निग्ध व रूक्ष गुण के अभाव से नहीं कहा जा सकता है।

अरूक्षत्वाच्चाणोरमूर्त्तपुद्गलस्यैकाविंशतितमो-भावो न स्यात् ।

अर्थ—रूक्षतादि न होने के कारण ही कालाणु अमूर्त्त स्वभाव है । इसी से उस में पुद्गल का इकवीसवां भाव नहीं है, अर्थात् वहुप्रदेशीपना नहीं है।

परोक्षप्रमाणापेक्षयाऽसद्भूतव्यवहारेणाप्युपचा-रेणामूर्त्तत्वम् ।

अर्थ—परोक्ष प्रमाण से, असद्भूत व्यवहार से और उपचार से भी कालाणु अमूर्त्त स्वभाव वाला ही है।

पुद्गलस्य शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन विभावस्वभा-वत्वम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिक नय से पुद्गल (तथा जीव) का विभाव स्वभाव होता है।

शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभावः, अशुद्धद्रव्यार्थिकेनाशुद्ध स्वभावः।

अर्थ—शुद्धद्रव्यार्थिक नय से शुद्ध और अशुद्धद्रव्यार्थिक नय से अशुद्ध स्वभाव है।

असद्भूतव्यवहारेणोपचरितस्वभावः।

अर्थ—असद्भूतव्यवहार नय से उपचरित स्वभाव है।

उक्तंच-द्रव्याणां तु यथारूपं तल्लोकेऽपि व्यवस्थितम्।
तथाज्ञानेन संज्ञातं नयोऽपि हि तथाविधः।११।

इति नययोजनिका।

अर्थ—लोकाकाश में समस्त द्रव्य जिसप्रकार व्यवस्थित हैं, उनका उसी प्रकार से यथर्थ ज्ञान कराने वाली नय भी हैं॥ ११॥

इस प्रकार नय योजना का स्वरूप कहा गया।

अब प्रमाण के स्वरूप को कहतें हैंः—

सकलवस्तुग्राहकं प्रमाणं, प्रमीयते, परिच्छिद्यते वस्तुतत्त्वं येन ज्ञानेन तत्प्रमाणम्।

अर्थ—जो ज्ञान वस्तु को सर्वांश ग्रहण करे उसे प्रमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं। अर्थात् जिस ज्ञान से वस्तु का स्वरूप निश्चय किया जावे, वह ज्ञान प्रमाण है।

तद्द्वेधा सविकल्पेतरभेदात् ।

अर्थ—वह प्रमाण दो प्रकार का है, सविकल्प और अविकल्प ।

सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधम् ।

अर्थ—सविकल्प या मन की अपेक्षा रखने वाला (मानस) प्रमाण चार प्रकार के हैं।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूपम् ।

अर्थ—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान इस प्रकार चार भेद स्वरूप हैं।

निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानमितिप्रमाणस्य व्युत्पत्तिः ।

अर्थ—मन रहित निर्विकल्प केवलज्ञान ही प्रमाण है। इस प्रकार प्रमाण की व्याख्या हुई।

अब नयों की व्याख्या कहते हैं।

प्रमाणेन वस्तुसंग्रहीतार्थैकांशो नयः, श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो, वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति, प्राप्नोतीति वा नयः ।

अर्थ—जो प्रमाण के द्वारा ग्रहण की हुई वस्तु के एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंश को ग्रहण करे अथवा श्रुत ज्ञान का विकल्प, या ज्ञाता का अभिप्राय, या वस्तु के नाना स्वभावों में से किसी एक स्वभाव को भिन्न करके वस्तु को प्राप्त करावे, जनावे सो नय है।

स द्वेधा सविकल्पनिर्विकल्पभेदादिति नयस्य व्युत्पत्तिः।

अर्थ—वह (नय) दो प्रकार की होती है, सविकल्प और निर्विकल्प। इस प्रकार नय की सामान्य व्याख्या हुई।

प्रमाणनययोर्निक्षेप आरोपणं स नामस्थापनादि-भेदेन चतुर्विधः।

अर्थ—प्रमाण और नयों में द्रव्य के आरोपण करने को निक्षेप कहते हैं, वह निक्षेप नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से चार प्रकार की होती है।

नाम निक्षेप—जिसमें गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया की अपेक्षा बिना ही, लोक व्यवहार के लिये, किसी पदार्थ की संज्ञा करली जाती है। जैसे किसी ने अपने पुत्र का नाम शंकर रक्खा, उस बालक में भस्मविलेपन, स्मशान रमण, विष पान, व्याल भूषणादि, कोई भी लोक प्रसिद्ध गुण व चिन्ह नहीं हैं, तो भी उसको शंकर कहा जाता है। इसी प्रकार विष्णु, धरणेन्द्र, देव कुमार, राजेन्द्र, देवेन्द्र, सुरेन्द्र, भूपेन्द्र इत्यादि अनेकों नाम केवल व्यवहारार्थ ही रख लिये जाते हैं, इन में गुण, जाति स्वभाव क्रिया आदि की कोई विवक्षा नहीं होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापना निक्षेप—धातु, पाषाण, काष्ट, मिट्टी की तदाकार व अतदाकार मूर्तियों, व चित्राम आदि में, हाथी, घोड़ा, प्यादा, वज़ीर, बादशाह तथा देव आदि की कल्पना करना। जैसे सतरंज की गोटियों में हाथी, घोड़ा, ऊंट, प्यादा, वज़ीर, बादशाह की कल्पना करना, या मनुष्याकार की पद्मासन या खड़े आसन की नग्न दिगम्बर प्रतिमा को आदिनाथ या अजित नाथादि की कल्पना करना, इत्यादि स्थापना निक्षेप के भेद हैं।

(१) तदाकार-जिसमें उसी आकार की मूर्ति में उसकी कल्पना करना। जैसे मनुष्याकार की दिगम्बर शान्त मुद्रायुक्त पद्मासन या खड़े आसन की प्रतिमा को जिसके आसन में संख का चिन्ह हो. उसे नेमिनाथ भगवान मानना, अथवा गाय, बैल के आकार वाली मूर्तियों को ही गाय, बैल आदि मानना, सो तदाकारस्थापना है।

(२) अतदाकार—जिसमें आकार कैसा ही हो, परन्तु अपनी इच्छा और प्रयोजन के वश से उस में देव, मनुष्य, पशु आदि की कल्पना करना, जैसे चांवल व लवंगादि में, अर्हन्त सिद्ध व साधु आदि की कल्पना, अथवा नारियल व सुपारी में सिंदूर पोत कर उसमें क्षेत्रपाल; भैरूं,(यक्ष जाति के देवों) की कल्पना या सतरंज की गोटों में ऊंट प्यादे आदि की कल्पना करना सो अदताकार स्थापना है।

टिप्पणी—नाम निक्षेप में पूज्य अपूज्य बुद्धि नहीं होती है, किन्तु स्थापना निक्षेप में पूज्य अपूज्य मानापमान का भाव होता है, इन दोनों में केवल इतना ही अन्तर है, परन्तु इन दोनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में गुण, स्वभाव, द्रव्य व क्रिया आदि की अपेक्षा नहीं होती है। केवल व्यवहार के लिये व प्रयोजन की सिद्धि के लिये-निक्षेपक की इच्छा ही की प्रधानता होती है, इसलिये इन दोनों में समानता रहती है।

द्रव्य निक्षेप—भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल सम्बन्धी अनुपस्थित, किन्तु हुई होती हुई, तथा आगामी होने वाले परिणाम विशेष को वर्तमान में कहना। जैसे कोई राजा अपना पद अपने उत्तराधिकारी को देकर आप मुनि हो गया, उसे वर्तमान में राजा कहना, या जो राजकार्य को सँम्हालने लगा है, परन्तु पूर्ण अधिकारी नहीं हुआ, उसे राजा कहना, अथवा राजपुत्र को (जो भविष्य में राजा होगा) राजा कहना, द्रव्य निक्षेप है। वह आगम नो आगम के भेद से दो प्रकार होता है।

(१) आगम द्रव्य निक्षेप—जिस समय जीवादि पदार्थों के कथन का जानकार आत्मा जीवादि पदार्थों के कथन में उपयुक्त न हो, किन्तु पहिले रहा हो, वर्तमान कुछ उपयुक्त और कुछ अनुपयुक्त हो, पूर्ण उपयुक्त न हो, अथवा आगामी उपयुक्त होगा-ऐसे आत्मा को आगम द्रव्यनिक्षेप कहते हैं। इसके भी भूत, वर्तमान और भविष्य के भेद से तीन भेद हैं। यथा-जो आत्मा जीवादि पदार्थों के कथन को जानता तो है, परन्तु वर्तमान में उस कथन में उपयोग नहीं लगा रहा है, किन्तु कुछ समय पहिले उपयुक्त था, उसे वर्तमान में भी उसका जानकार कहना, भूतआगम द्रव्यनिक्षेप है। जो आत्मा जीवादि के कथन को जानता तो है, परन्तु पूर्ण उप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्त नहीं, कुछ कुछ उपयुक्त हो रहा है और शीघ्र पूर्णता करने वाला है, वह **वर्तमानआगम** द्रव्य निक्षेप है। और जो आत्मा जीवादि के कथन का जानकार तो है, परन्तु उपक्त नहीं है, किन्तु आगामी होगा, सो **भावीआगम** द्रव्य निक्षेप है।

(२) **नोआगमद्रव्यनिक्षेप**—जीवादि पदार्थों के ज्ञाता के त्रिकालवर्ती अनुपस्थित परिणामों को, ज्ञाता के शरीर में मान कर वर्तमान में कहना, सो नोआगमद्रव्यनिक्षेप है। इसके तीन भेद हैं, ज्ञायक शरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त।

ज्ञायक शरीर के भी तीन भेद हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान। जीवादि पदार्थों का ज्ञाता जिस समय जीवादि के कथन में उपयुक्त न हो, किन्तु पहिले रहा हो, उस समय उसके शरीर को ज्ञाता कहना, **भूतज्ञायक** शरीर है। जिस समय ज्ञाता उस कथन में पूर्ण उपयुक्त न हुआहो, कुछ हुआ हो कुछ न हुआ हो, किन्तु होरहा हो, उस समय उसके शरीर को ज्ञाता कहना, **वर्तमानज्ञायक** शरीर है। और ज्ञाता उपयुक्त न हो, किन्तु हाने वाला हो, तो भी वर्तमान में उसके शरीर को ज्ञाता कहना, **अनागतज्ञायक** शरीर है।

भावीनोआगम द्रव्यनिक्षेप—भी भूत, भविष्यत और वर्तमान तीन भेद रूप होता है। जैसे—कोई जीव पहिले जीवादिपदार्थों का ज्ञाता था, परन्तु वर्तमान में वह उसे भूल गया है, इसलिये इस समय न तो वह ज्ञाता ही है, और न उपयुक्त है, तो भी वर्तमान में उसके शरीर को ज्ञाता कहना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूतभावनोआगम-द्रव्यनिक्षेप है। कोई जीव न तो ज्ञाता है और न पूर्ण उपयुक्त है, किन्तु जीवादि पदार्थों के जानने में लग रहा है, उस समय उसके शरीर को ज्ञाता कहना, **वर्तमानभाविनोआगम** द्रव्य निक्षेप है। और जिस समय न तो ज्ञाता है और न उपयुक्त है, परन्तु भविष्य में ज्ञाता हो जावेगा, उसके शरीर को वर्तमान में ज्ञाता कहना, **भविष्यत् भाविनोआगम** द्रव्य निक्षेप है।

टिप्पणी-भावी नो आगम द्रव्य निक्षेप आत्मा के सिवाय सभी शरीरादि द्रव्यों को ग्रहण करता है, अतएव उसे यथायोग्य लक्षणानुकूल लगा लेना चाहिये। ईंट, चूना पड़ा है उससे घर बनने वाला है, उसे घर कहना या जो बन रहा है पूर्ण नहीं हुआ है, उसे घर कहना, या गिरे हुए खण्डहर को घर कहना इत्यादि।

तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यनिक्षेप- कर्म, नो कर्म, दो प्रकार का होता है, कर्म तद्व्यतिरिक्त—जो मनुष्यादि नामकर्मरूप परिणमन करने के सन्मुख कर्म वर्गणाएँ हैं, होंगी व हुई थीं। जिनसे ज्ञाता के शरीर को कारण नाम कर्म का बन्ध होता है, उनको वर्तमान में उन्हीं मनुष्यादि (जो होना हो) नाम कर्म रूप कह देना, सो **कर्मतद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप** है।

नोकर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्य निक्षेप— आहारादि पर्याप्तियों के रूप परिणमन के सन्मुख जो नोकर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्गणाएँ जिनसे ज्ञाता का शरीर बना था, बन रहा है, या बनेगा, उनको उन्हीं मनुष्यादि शरीर रूप वर्तमान में कहदेना।

विशेष—द्रव्य निक्षेप में त्रिकाल गोचर पदार्थ को पर्यायों को द्रव्य से अभिन्न होने के कारण वर्तमान, भूत, भविष्यत् अनुपस्थित् पर्यायों को वर्तमान वत् या वर्तमान समय में ही कहा जाता है। इसके आगमद्रव्यनिक्षेप में-केवल 'ज्ञाता आत्मा का विचार होता है। और नो आगम में ज्ञाता के शरीर आदि परिकर का विचार किया जाता है। तात्पर्य-द्रव्यनिक्षेप अनुपस्थित द्रव्य को उसकी भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् पर्यायों सहित ग्रहण करता है, इसलिये इसके जितने उत्तर भेद होंगे वे सभी तीनों काल सम्बन्धी विषयों को ग्रहण करेंगे। (विशेष राजवार्तिक से जानना) यद्यपि नैगमनय और द्रव्य निक्षेप का विषय समान मालूम होता है, तथापि एक नहीं है। नैगमनय ज्ञान का भेद है, इसलिये ये विषयी (जानने वाला) है। और द्रव्य निक्षेप पदार्थों की अवस्था रूप है, इसलिये विषय (जानने योग्य ज्ञेय) है। तात्पर्य इनमें ज्ञायक ज्ञेय या विषयी विषय का सम्बन्ध है, इसलिये दोनों एक नहीं हैं। इस प्रकार नाम, स्थापना और द्रव्य इन तीन द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा रखने वाले निक्षेपों का कथन किया। अब पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा रखने वाले भाव निक्षेप को कहते हैं।

भावनिक्षेप—द्रव्य की वर्तमान पर्याय मात्र को ग्रहण करना। यद्यपि इसका विषय भी ऋजु सूत्र नय से मिलता है, तथापि एक नहीं है। ऊपर कहे अनुसार ऋजुसूत्र नय प्रमाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अंश होने से विषयी और भाव निक्षेप पदार्थ की पर्याय स्वरूप होने से विषय स्वरूप है, अतएव दोनों भिन्न २ हैं। इसके भी आगम और नो आगम दो भेद हैं।

आगम भाव निक्षेप—ज्ञाता का आत्मा जिस समय अपने ज्ञात विषय में उपयुक्त हो, तब उसको ज्ञाता कहना अथवा राजा (राज्य करते हुए जोव) को राजा कहना।

नो आगम भाव निक्षेप—ज्ञाता का आत्मा जिस समय अपने ज्ञात विषय में उपयुक्त हो उस समय उसके शरीर को ज्ञाता कहन, अथवा राज्य करते हुए राजा के शरीर को राजा कहना।

विशेष—नाम को स्थापना, द्रव्य या भाव, या स्थापना को केवल नाम या द्रव्य भाव, या भाव को स्थापना द्रव्य या नाम अथवा द्रव्य को मात्र नाम या स्थापना अथवा भाव न समझ लिया जाय, इसलिये निक्षेपों के स्वरूप का कथन जानना आवश्यक है। नाम स्थापना और द्रव्य ये तीनों निक्षेप द्रव्य को विषय करते हैं, इसी से द्रव्यार्थिक नयाधीन हैं, और भाव निक्षेप पर्याय को विषय करने से पर्यायार्थिक नय के आधीन है। भेद प्रभेदों को परिशिष्ट सं० ६ में देखो।

इति निक्षेपस्य व्युत्पत्ति।

अर्थ इस प्रकार निक्षेप का स्वरूप कहा गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट सं० ६.

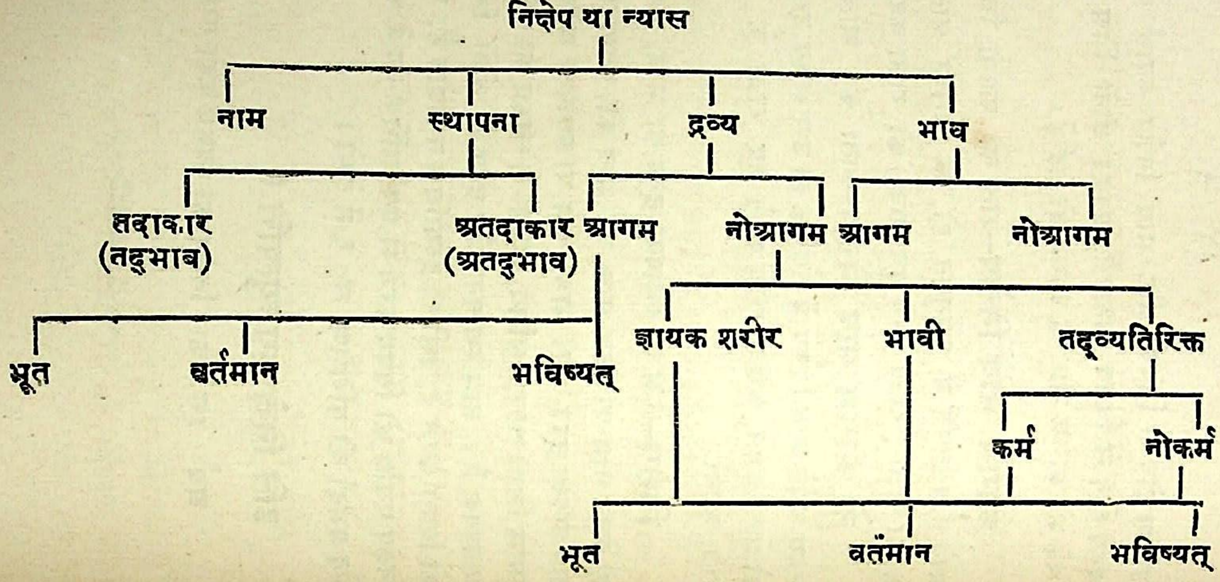

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः ।

अर्थ—जिसका द्रव्य ही अर्थ या प्रयोजन होवे वह द्रव्यार्थिक नय है।

शुद्धद्रव्यमेवार्थःप्रयोजनमस्येति शुद्धंद्रव्यार्थिकः ।

अर्थ—शुद्ध द्रव्य हो जिसका अर्थ या प्रयोजन होवे वह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

अशुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति अशुद्धद्रव्यार्थिकः ।

अर्थ—अशुद्ध द्रव्य ही जिसका अर्थ या प्रयोजन हो, वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

सामान्यगुणादयोऽन्वयरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति द्रवति व्यवस्थापयतीत्यन्वयद्रव्यार्थिकः ।

अर्थ--अन्वय द्रव्यार्थिक नय उसे कहते हैं, जो द्रव्यको उसके सामान्य सत्तादि गुणों को अविच्छिन्न रूप से प्राप्त करावे, या व्यवस्थापित करे।

स्वद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येतिस्वद्रव्यादि ग्राहकः ।

अर्थ--स्व द्रव्यादि चतुष्टय को ग्रहण करना ही जिस का अर्थ या प्रयोजन हो, उसे स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येतिपरद्रव्यादिग्राहकः।

अर्थ--पर द्रव्यादि चतुष्टय को ग्रहण करना ही है प्रयोजन या अर्थ जिसका, सो परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

परमभावग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभाव ग्राहकः।

अर्थ--परम भाव ग्रहण करना ही जिसका अर्थ या प्रयोजन हो, वह परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

इति द्रव्यार्थिकस्य व्युत्पत्तिः।

अर्थ--इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की व्याख्या हुई।

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः।

अर्थ--पर्याय ग्रहण करना ही जिसका प्रयोजन या अर्थ हो वह पर्यायार्थिक नय है।

अनादिनित्यपर्यायएवार्थः प्रयोजनमस्येत्यनादि नित्यपर्यायार्थिकः।

अर्थ--अनादि नित्य (सुमेरु पर्वतादि की) पर्याय ग्रहण करना ही जिसका प्रयोजन हो, वह अनादि नित्य-पर्यायार्थिक नय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादि नित्य पर्यायार्थिकः।

अर्थ--सादि नित्य (सिद्ध) पर्याय को ग्रहण करना ही जिसका प्रयोजन हो, वह सादिनित्य पर्यायार्थिक नय है।

शुद्धपर्यायएवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः।

अर्थ--शुद्ध (सिद्ध जीव या परमाणु आदि को) पर्याय ही ग्रहण करना जिसका प्रयोजन हो, वह शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः।

अर्थ—अशुद्ध पर्याय हो ग्रहण करना जिसका प्रयोजन हो, वह अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्तिः।

अर्थ—इस प्रकार पर्यायार्थिक नय की व्याख्या हुई।

नैकं गच्छतीति निगमः, निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः।

अर्थ—जो प्रचुर गमन करे सो निगम, निगम का अर्थ विकल्प है सो उसमें होने वाला ज्ञान नैगम कहाता है। अर्थात् नैगम पदार्थ के संकल्प को ग्रहण करने वाला है और वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकल्प भूत भविष्यत् और वर्तमान, इन तीनों काल सम्बन्धी पर्यायों को ग्रहण करता है। इसका विषय विस्तीर्ण होने से ही प्रचुर गमन अर्थ किया गया है।

अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति संग्रहः।

अर्थ—अभेद रूप से पदार्थों की जाति मात्र को समूह रूप से ग्रहण करे वह संग्रह नय है।

संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः।

अर्थ—संग्रह नय के द्वारा ग्रहीत पदार्थों को भेद रूप से वस्तु का व्यवहार करे वह व्यवहार नय है।

ऋजु प्रांजलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः।

अर्थ—जो सरलता पूर्वक (वर्तमान पर्याय मात्र) पदार्थों को ग्रहण करे सो ऋजु सूत्र नय है।

शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः।

अर्थ—जो शब्द व्याकरण, प्रकृति प्रत्यय आदि से सिद्ध हो, उसे शब्द नय कहते हैं। यह शब्द नय लिंग कारक पुरुष संख्या आदि के व्यभिचार को दूर कर शब्द के भाव को ग्रहण करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्परेणाधिरूढा समभिरूढा शब्द भेदेऽप्यर्थ भेदो नास्ति। यथा शक्र इन्द्रः पुरंदर इत्यादयः समभिरूढाः ।

अर्थ—शब्द भेद होने पर भी अर्थ भेद न होते हुए भी किसी नियत् अर्थ ही को ग्रहण करे सो समभिरुढ नय है। जैसे इन्द्र शक्र पुरंदर आदि शब्द भेद होने पर भी रूढ़ि अर्थ इन्द्र ही ग्रहण करना।

एवंक्रियाप्रधानत्वेनभूयत इत्येवंभूतः ।

अर्थ-वर्तमान समय की क्रिया की प्रधानता लेकर जो होता है सो एवंभूत नय है। जैसे पूजा करते हुए मनुष्य को पुजारी कहना ।

विशेष-इन नैगमादि नयों का विषय क्रम से उत्तरोत्तर सूक्ष्म सूक्ष्म होने से, पूर्व पूर्व की नय उत्तरोत्तर नयों से विरुद्ध विषय वालीं कारण स्वरूप पड़ती हैं और उत्तरोत्तर नयें पूर्व पूर्व नयों के अनुकूल विषय वालीं उनके कार्य स्वरूप होती हैं। जैसे-नैगम का संकल्प मात्र वहु विषय होता है. परन्तु संग्रह केवल उपस्थित् पदार्थों को ही समूह रूप से ग्रहण करता है और व्यवहार उसमें भी भेद कर देता है, इत्यादि। इस लिये नैगम संग्रह का और संग्रह व्यवहार का, व्यवहार ऋजुसूत्र का, ऋजुसूत्र शब्द का, शब्द समभिरूढ़ का और वह एवंभूत का कारण होता है और एवंभूत समभिरुढ़ का कार्य, समभिरूढ़ शब्द का, शब्द ऋजुसूत्र को, कार्य ऋजुसूत्र व्यवहार का कार्य, वह संग्रह का और वह नैगम का कार्य होता है। इनका अल्प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अल्प विषय नीचे के दृष्टांत से जानना चाहिये। जैसे मथुरा नगर में गरुड़ पक्षी रहता है, यह नैगम का विषय माना जाय, मथुरा के बाग में गरुड रहता है, यह संग्रह का विषय होगा। इसी प्रकार गरुड़ मथुरा के बाग के एक कौने में रहता है, यह व्यवहार का। गरुड़ बाग के कौने के एक वृक्ष पर रहता है, यह ऋजुसूत्र का। गरुड़ वृक्ष की एक डाली पर रहता है, यह शब्द का। गरुड़ अपने शरीर में रहता है, यह समभिरूढ़ का। और गरुड़ अपने आत्मप्रदेशों में रहता है, यह एवंभूत का विषय समझना चाहिये।

शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।

अर्थ—शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय ये दोनों द्रव्यार्थिक नय के ही भेद हैं।

अभेदानुपचारितया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः।

अर्थ—अभेद और अनुपचरित रीति से जो पदार्थों का निश्चय करे सो निश्चय नय है।

भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः।

अर्थ—भेद और उपचार करके जो पदार्थों का व्यवहार करे सो उपचार या व्यवहार नय है।

गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदात् भेदकः सद्भूत व्यवहारः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ--संज्ञा, संख्या, लक्षण या प्रयोजनादि के वश से गुण और गुणी में भेद कल्पना करने वाला सद्भूतव्यवहार नय है।

अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्य, अन्यत्र समारोपण-मसद्भूतव्यवहारः।

अर्थ-अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म को अन्यत्र समारोप करके कहना सो असद्भूतव्यवहारनय है। जैसे कर्मसहित (संसारी) जीव को मूर्तीक तथा जड़ कहना, अथवा कार्माण रूप परिणत पुद्गल द्रव्य को चैतन्य या अमूर्तीक कहना।

असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युप-चारं यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः।

अर्थ-असद्भूत व्यवहार आप ही उपचार रूप है, और जो उपचार में भी उपचार करे, वह उपचरितअसद्भूत व्यवहार नय कहाता है।

गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभावस्वभा-विनोः कारककारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः।

अर्थ-गुण--गुणी, पर्याय--पर्यायी, स्वभाव-स्वभावी और कारक-कारकवान में भेद करना सो सद्भूत व्यवहार नय का विषय है।

द्रव्ये द्रव्योपचारः, पर्याये पर्यायोपचारः, गुणे गुणोपचारः, द्रव्ये गुणोपचारः, द्रव्येपर्यायोपचारः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणे द्रव्योपचारः, गुणे पर्यायोपचारः, पर्याये द्रव्योपचारः, पर्याये गुणोपचार इति नवविधोऽसद्भूत व्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः ।

अर्थ--जो अन्य द्रव्य[1] को अन्य द्रव्य में, अन्य गुण[2] को अन्यगुण में, अन्य पर्याय[3] को अन्य पर्याय में, अथा द्रव्य[4] को गुण में, द्रव्य[5] को पर्याय में, गुण[6] को द्रव्य में, गुण[7] को पर्याय में, पर्याय[8] को द्रव्य में, पर्याय[9] को गुण में, उपचार कर कहे सो नव प्रकार असद्भूतव्यवहार नय है। अर्थात् यही उसका विषय नव प्रकार है।

उपचारः प्रथग् नयो नास्तीति न पृथक्कृतः । मुख्याभावेसति प्रयोजने निमित्ते चोपचारःप्रवर्त्तते सोऽपि सम्बन्धाविनाभावः ।

अर्थ—उपचार (व्यवहार) नय कोई पृथक नय नहीं है; इसी से प्रथक नहीं की गई है। वह निमित्त व प्रयोजन के वश से मुख्य पदार्थ के अभाव में अविनाभाव सम्बन्ध होने पर ही उपचार रूप प्रवर्तती है। (जो जिसके बिना न रह सके, उसके साथ सम्बन्ध होने को अविनाभाव सम्बन्ध कहा जाता है)

संश्लेषः सम्बन्धः, परिणामपरिणामि सम्बन्धः, श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्धः, ज्ञानज्ञेयसम्बन्धः, चारित्रचर्यासम्बन्धश्चेत्यादि सत्यार्थः, असत्यार्थः, सत्यासत्यार्थश्चेत्युपचरिताऽसद्भूतव्यवहारनयस्यार्थः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ-संश्लेष सम्बन्ध को कहते हैं। जैसे परिणाम परिणामी का श्रद्धाश्रद्धेय (श्रद्धा करने योग्य अर्थात् जिसकी श्रद्धा की जाय) का ज्ञान ज्ञेय (जानने का विषय; का और चरित्रचर्या का सम्बन्ध सत्य असत्य या सत्यासत्य होते। अनहोते अथवा होते अनहोते) पदार्थों का उपचार करना, सो उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का विषय है।

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते।

अर्थ--यहां फिर से अध्यात्म भाषा में नयों का स्वरूप कहते हैं।

तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च।

अर्थ--मूल नय दो हैं, निश्चय और व्यवहार।

तत्रनिश्चयनयोऽभेदविषयो व्यवहारो भेद विषयः।

अर्थ--निश्चयनय अभेद और व्यवहार नय भेद विषय करने वाली है।

तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च।

अर्थ-निश्चय नय के दो भेद हैं शुद्ध निश्चय और अशुद्ध निश्चय है।

तत्रनिरुपाधिकगुणगुण्यभेदविषयकःशुद्धनिश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ--निरुपाधिक (शुद्ध) गुण गुणी को अभेदरूप विषय करने वाला शुद्ध निश्चयनय है। जैसे जीव को शुद्ध केवलज्ञानादि उपयोग रूप कहना।

सोपाधिकविषयोऽशुद्धनिश्चयो यथा मतिज्ञानादयो जीव इति।

अर्थ—उपाधि सहित गुण गुणी को अभेद रूप कथन करे, सो अशुद्धनिश्चय है। जैसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि जीव है, ऐसा कहना।

व्यवहारो द्विविधः सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूतव्यवहारश्च।

अर्थ—व्यवहार नय दो प्रकार का है, सद्भूत व्यवहार नय और असद्भूत व्यवहार नय।

तत्रैकवस्तुविषयः सद्भूतव्यवहारः, भिन्न वस्तुविषयोऽसद्भूतव्यवहारस्तत्र सद्भूतव्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात्।

अर्थ-एक ही वस्तु को [वृक्ष और डाली इस भांति] भेद रूप गृहण करे सो सद्भूत व्यवहार नय है। तथा भिन्न २ वस्तुओं को सम्बन्ध रूप गृहण करे सो असद्भूतव्यवहार नय है। यह सद्भूतव्यवहार नय भी दो प्रकार का होता है। उपचरित और अनुपचरित्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयः उपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः।

अर्थ–जो उपाधि सहित गुण गुणी को भेद रूप ग्रहण करे वह उपचरितसद्भूतव्यवहार नय है। जैसे जीव के मतिज्ञानादिगुण कहना।

निरुपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य केवलज्ञानादयोगुणाः।

अर्थ–उपाधि रहित गुण गुणी में कल्पना कर ग्रहण करे सो अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय है, जैसे जीव के केवल ज्ञानादि गुण कहना परमाणु में स्पर्श रस गंध वर्ण गुण भेद रूप कहना।

असद्भूतव्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात्।

अर्थ–असद्भूत व्यवहार नय भी दो प्रकार का है, उपचरित व्यवहार नय और अनुपचरित व्यवहार नय

तत्रासंश्लेषरहितवस्तुसम्बन्धविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा–देवदत्तस्य धनमिति।

अर्थ–सम्बन्ध रहित वस्तुओं की सम्बन्ध रूप से ग्रहण करे सो उपचरितअसद्भूत व्यवहार नय है, जैसे देवदत्त का धन इत्यादि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संश्लेषसहितवस्तुसम्बन्धविषयोऽनुपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति ।

अर्थ-सम्बन्धित पदार्थों को सम्बन्ध रूप ग्रहण करे सो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय है । जैसे जीव का शरीर इत्यादि ।

इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः श्रीमद्देवसेन विरचितापरिसमाप्ता ।

अर्थ--इस प्रकार श्री मद्देवसेन आचार्य कृत सुखबोधार्थ आलापपद्धति ग्रन्थ की दीपचन्द्र वर्णी नरसिंहपुर निवासी कृत सरल और विस्तृत भाषा टीका समाप्त हुई ।

शुभम् भूयात्–शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

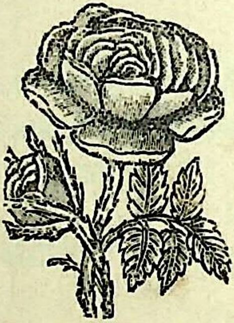

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षा दिला कर सु
ब्रह्मचर्य्याश्रम" चौ
प्रविष्ट करायेगा।

इसी वर्ष से
साहित्य, अंग्रेजी, हि
साथ २ सूती वा
कालीन आदि बुनने
तथा और भी उद्योग
चुकने पर विद्वानों
वे स्वतन्त्र आजीवी
कर सकें।

प्रवेशेच्छुओं
पर लिख कर मँगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi